जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2528

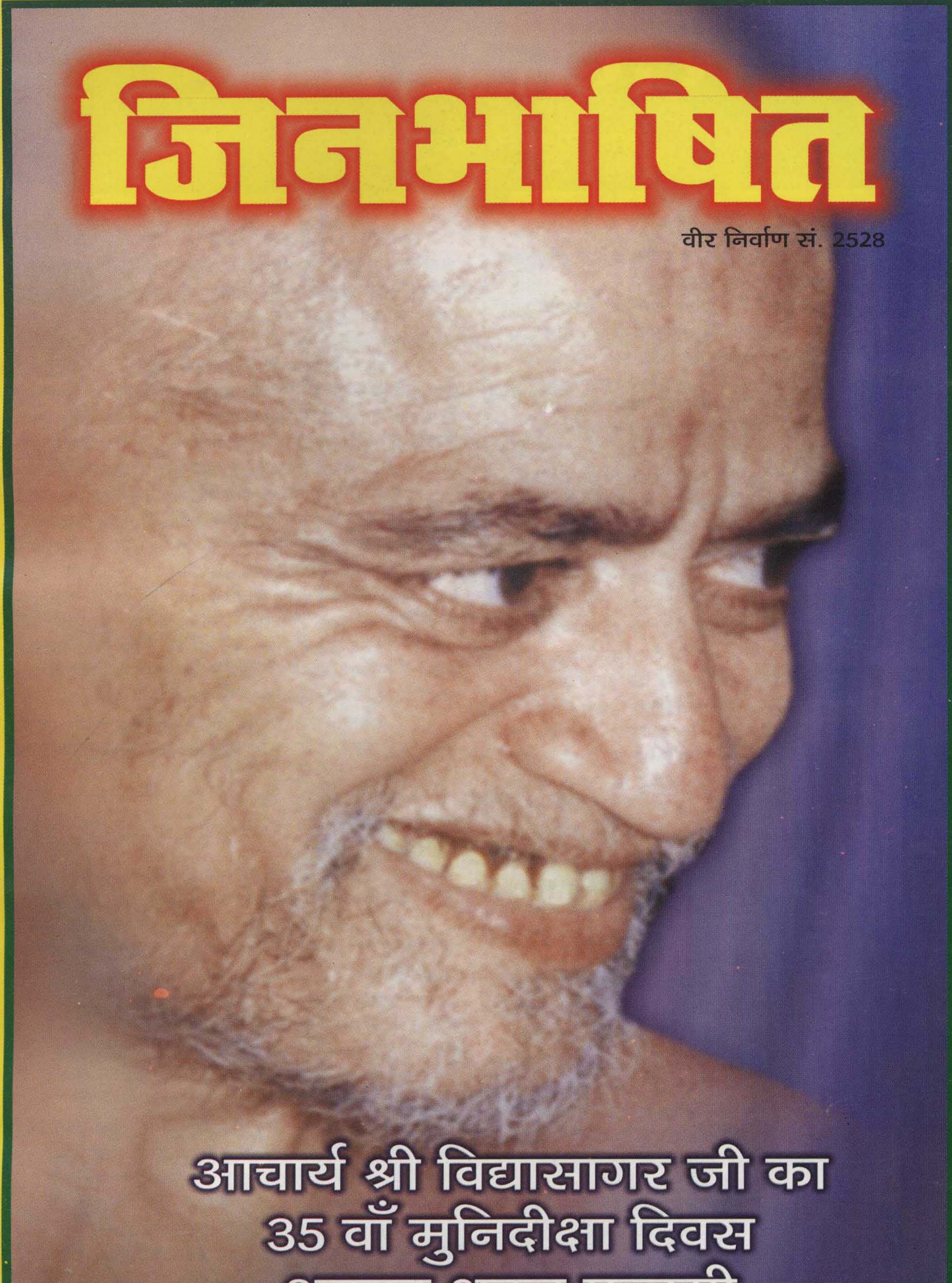

आचार्य श्री विद्यासागर जी का 35 वाँ मुनिदीक्षा दिवस आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी

आषाढ़,वि.स. 2059

जुलाई 2002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवदर्शन

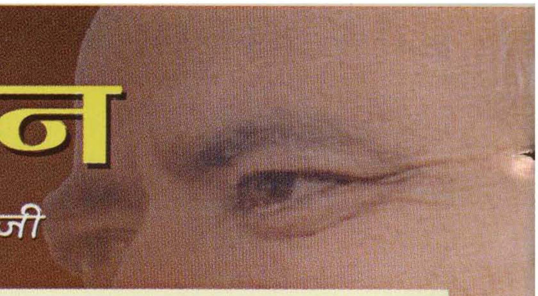

आचार्यश्री विद्यासागर जी

देव की आराधना मानव को देव बना देती है। लोक में कहावत प्रसिद्ध है कि दीप से दीप जलता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि आप लोग देव बनना चाहते हैं, अरहंत परमेष्ठी बनना चाहते हैं, तो उसके लिए आत्मारूपी उपादान की सँभाल करो। हृदय की शुद्धि करो तब अन्य निमित्त बनेंगे। कुन्द-कुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में लिखा है-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥

जो द्रव्य गुण और पर्याय के माध्यम से अरहंत को जानता है, वह आत्मा को जानता है और जो आत्मा को जानता है उसका मोह नियम से विनाश को प्राप्त होता है। संसार का प्रत्येक पदार्थ त्रिरूप है अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्याय रूप है। अन्य पदार्थों के समान अरहन्त परमेष्ठी भी त्रिकात्मक हैं। उनके ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव वाले जीवद्रव्य, चराचर को जानने वाले केवलज्ञानादि गुण और अन्तिम विभाव व्यंजन पर्याय को जो जानता है और साथ में अपने द्रव्य, गुण, पर्याय की तुलना करता है वह अवश्य ही आत्मा को जानता है और जिसने शुद्ध-बुद्ध अर्थात वीतराग सर्वज्ञ स्वभाव वाले आत्मा को जान लिया, वह रागादि विकारों को भी स्वीकृत नहीं कर सकता।

साक्षात् अरहंत तो आजकल उपलब्ध नहीं है, पर स्थापना निक्षेप के द्वारा जिनकी स्थापना की जाती है, वे अरहंत विद्यमान है। अरहंत की प्रतिमा एक दर्पण है। उसमें अपने आपको देखकर अपनी कालिमा को दूर करने का प्रयत्न करो। कोई भी व्यक्ति दर्पण नहीं देखता, परन्तु दर्पण के द्वारा अपने मुख को देखता है, उसमें लगी हुई कलिमा को छुटाता है।

'णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं' यहाँ अरहंत परमेष्ठी को पहले नमस्कार किया है और सिद्ध परमेष्ठी को पश्चात्, जबकि अरहंत परमेष्ठी चार घातिया कर्मों से सहित होने के कारण संसारी हैं और सिद्ध परमेष्ठी अष्टकर्म से रहित होने के कारण मुक्त हैं। इतना स्पष्ट अन्तर होते हुए भी अरहन्त को पहले नमस्कार करने का प्रयोजन यह है कि उनसे हमें मंगल की प्राप्ति होती है, सिद्ध परमेष्ठी के अस्तित्व का पता भी हमें अरहन्त से मिलता है, इसलिये 'अरहंता मंगलं' के पश्चात् 'सिद्धा मंगलं' कहा जाता है। अरहन्त उस काँच के समान हैं जिसके पीछे लाल-लाल मसाला लगा हुआ है। उस मसाले के कारण ही दर्पण में हमें हमारा मुख दिखता है। सिद्धपरमेष्ठी उस काँच के समान हैं जिस पर कोई मसाला नहीं लगा है, सब कुछ आरपार हो जाता है।

दूसरा दृष्टान्त-सुवर्ण यदि शुद्ध है तो कोमलता के कारण उससे आभूषण नहीं बनते ,परन्तु जिस सुवर्ण में थोड़ी अशुद्धता है, किंचिन्मात्र तामा आदि जिसमें मिला है, उससे आभूषण बनते हैं और ये टिकाऊ रहते हैं। सिद्ध परमेष्ठी शुद्ध सुवर्ण के समान हैं अतः उनसे किसी को उपदेशादि नहीं मिलता। अरहन्त अशुद्ध सुवर्ण के समान हैं, उनसे सबको उपदेशादि मिलता है। यहाँ अशुद्धता का सम्बन्ध अपूज्यता के साथ नहीं लगाना। इतनी अशुद्धता के रहने पर भी अरहन्त शत इन्द्रों के द्वारा पूज्य होते हैं।

अरहंत भगवान् की विशेषता वीतरागता और सर्वज्ञता से है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति वीतराग और सर्वज्ञ की उपासना से ही हो सकती है, रागी और अल्पज्ञानी जीवों की उपासना से नहीं। अरहंत की प्रतिमा को प्रतिष्ठा शास्त्र के अनुसार अरहंत माना जाता है और उसके दर्शन करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

शास्त्र के द्वारा उसी जीव को आत्मा का ज्ञान हो सकता है जो बहरा नहीं है तथा पढ़-लिख सकता है, परन्तु अरहन्त की प्रतिमा का दर्शन तो प्रत्येक मनुष्य के लिये सम्यक्त्व की प्राप्ति में सहायक हो सकता है। अरहंत का दर्शन दृश्य काव्य के समान तत्काल आनंद देने वाला होता है। यह तो रही उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व की बात, परन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन तो साक्षात् जिनेन्द्र के पादमूल का आश्रय लिये बिना हो नहीं सकता। पूज्यपाद स्वामी ने सवार्थसिद्धि के प्रारंभ में निर्ग्रन्थाचार्य का वर्णन करते हुए लिखा है-

'अवाग्विसर्गं वपुषा मोक्षमार्गं निरूपयन्तं' अर्थात् वचन बोले बिना ही जो शरीर मात्र से मोक्षमार्ग का निरूपण कर रहे थे।

वंदना अर्थात् देवस्तुति मुनि के षडावश्यकों में सम्मिलित है। उसे मुनि अवश्य ही करते हैं। समन्तभद्र स्वामी ने कहा है-

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा,
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः ॥

अर्थात् जिसकी स्तुति करना है वह सामने हो भी और नहीं भी हो, परन्तु स्तुति करने वाले साधु को उसके फल की प्राप्ति अवश्य ही होती है।

वंदना या दर्शन करते समय इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि वंदना का प्रयोजन भोग की प्राप्ति न हो, किन्तु कर्म क्षय हो। अभव्य जीव भोग के निमित्त धर्म करता है, परन्तु भव्य प्राणी कर्म क्षय के लिए धर्म करता है। कितना अन्तर है दोनों में, एक का लक्ष्य संसार है और एक का लक्ष्य मुक्ति।

ज्ञानी जीव भगवान् के दर्शन करते समय कहता है- गुणवंत प्रभो, तुम हम सम, परन्तु तुमसे हम भिन्नतम अर्थात् हे प्रभो! द्रव्य दृष्टि से हम और आप समान हैं परन्तु पर्याय दृष्टि से हम आपसे सर्वदा भिन्न हैं। आपका आलंबन लेकर हम आपके समान बनना चाहते हैं। अरहंत तो निमित्त भाव हैं, कार्य के उपादान आप स्वयं हैं। अपनी शक्ति की ओर दृष्टिपात करो। ❑

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC
डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2002

जिनभाषित

जुलाई 2002

मासिक

वर्ष 1, अङ्क 6

सम्पादक
डॉ. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
137, आराधना नगर,
भोपाल- 462003 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-776666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया
पं. रतनलाल बैनाड़ा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश राणा, जयपुर

◆

द्रव्य-औदार्य
श्री गणेशप्रसाद राणा
जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-351428, 352278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ **प्रवचन**
- देवदर्शन : आचार्य श्री विद्यासागर जी — आवरण पृष्ठ 2

◆ **आपके पत्र : धन्यवाद** — 2

◆ **सम्पादकीय** : मूकमाटी : एक उत्कृष्ट महाकाव्य — 6

◆ **लेख**
- हिन्दुत्व और जैन समाज : अजितप्रसाद जैन — 4
- अहिंसा पर हमला : जे.के. संघवी — 5
- आत्मान्वेषी : आचार्य श्री विद्यासागर : मुनि श्री क्षमासागर — 11
- रत्नत्रय के प्रकाशपुञ्ज : डॉ. श्रेयांसकुमार जैन — 13
- साहित्य जगत् के ज्योतिर्मय नक्षत्र आचार्य श्री विद्यासागर : डॉ. के.एल. जैन — 15
- आचार्य श्री विद्यासागर जी के साहित्य पर हुए एवं हो रहे शोधकार्य : डॉ. शीतलचन्द्र जैन — 17
- पंचास्तिकाय की 111वीं गाथा प्रक्षिप्त है : स्व. पं. मिलाप चन्द्र जी कटारिया — 21
- कविवर सन्तलाल और उनका सिद्धचक्र विधान : डॉ. कपूरचन्द्र जैन — 23
- सप्त व्यसन त्याग की वैज्ञानिक अवधारणा : प्राचार्य निहालचन्द्र जैन — 25
- पूजा : आचार्य श्री विद्यासागर की पूजा : मुनि श्री योगसागर — 20

◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 27

◆ **व्यंग्य** : खेल न खेलने का दु:ख : शिखरचन्द्र जैन — 29

◆ **समाचार** — 3, 28, 30-32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

आपके संपादकीय पर हार्दिक बधाई। मैं अपने विचार आपको प्रेषित कर रहा हूँ, उचित लगे तो प्रकाशित करने की कृपा करें।

पूजा, भक्ति का एक रूप है। प्रभु के गुणस्तवन का एक माध्यम है। जैनदर्शन पूर्णत: कर्म सिद्धान्त पर आश्रित है। आचार्यों ने आस्रव के संवर हेतु सामान्यजन को बड़े ही सुगम मार्ग सुझाये हैं। जप एवं पूजा में प्रत्यक्षत: मन की गति का अपेक्षत: निरोध तथा परोक्ष रूप में जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष के मार्ग में अग्रसर होने में सहायक जो गुण आवश्यक हैं, उनका स्मरण निहित है।

पूजा की पद्धति क्या हो, यह विद्वानों के विवाद एवं पांडित्य का विषय तो हो सकता है, किन्तु सामान्य पूजक के लिये परम्परा एवं आस्था ही उसकी प्रेरक होती है, जहाँ उसकी भावनायें एवं मान्यताएँ प्रगाढ़ता से जुड़ी होती हैं। हर व्यक्ति का अपनी शैली एवं कार्यपद्धति के प्रति आग्रह होता है, जो धार्मिक क्रियाओं में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। जब भी किसी आम्नाय, पद्धति अथवा कर्मकाण्ड का विरोध या हठीला आग्रह प्रबल होता है, तब प्रतिक्रिया स्वरूप किसी विशेष वर्ग की भावनाओं को ठेस पहुँचती है। मन में आक्रोश उत्पन्न होता है। कहीं-कहीं तो यह संघर्ष का रूप भी ले लेता है। संघर्ष एवं किसी को भी शारीरिक या मानसिक आघात पहुँचाना स्पष्ट ही हिंसा का रूप है। ऐसी स्थिति अहिंसा धर्म के परिपालकों के लिये कदापि भी उचित नहीं कही जा सकती। सहज मानवीय गुणों के भी विपरीत है ऐसा आचरण। सामान्य सिद्धांत है कि जैसे व्यवहार की अपेक्षा आप दूसरों से करते हैं, वैसा ही व्यवहार स्वयं भी अन्यों से करें।

क्रिया एवं पद्धति प्रत्येक का निजी विषय है। इसमें न तो हस्तक्षेप उचित है और न ही उपहास। सभी लोग विभिन्न उद्देश्यों एवं संकल्पों की पूर्ति के लिये व्रत, आराधना एवं साधना करते हैं। कुछ ही लोग हैं जो बिना समझे-जाने, देखा-देखी ही क्रिया करने लग जाते हैं। अज्ञानता, मूढ़ता या अविवेक के कारण भी पद्धतिभिन्नता संभव है। झूठे अहंकार तथा लोकभय के कारण भी लोग मन में इच्छा होने के उपरान्त भी किसी विद्वान से अपनी क्रिया का कारण या सम्यक् पद्धति पूछने, समझने से कतराते हैं। पूजापद्धति तो दूर, अनेक लोग तो यह भी नहीं जानते कि मंदिर क्यों जाते हैं? मंदिर जाकर दर्शन कैसे करें, क्या पाठ बोलें, कहाँ खड़े हों अथवा बैठें, जाप कैसे दें आदि अनेक प्रश्न हैं, जिनके बारे में सभी लोग भली-भाँति नहीं जानते हैं और न ही संकोचवश वे किसी से समझना या सीखना चाहते हैं? शनै:-शनै:, वे जैसा कर रहे हैं, उसके प्रति उनकी आस्था एवं मान्यता दृढ़तर होती जाती है। उन्हें उनकी श्रद्धा से डिगा पाना असंभव जितना ही कठिन होता है।

यह भी सत्य है कि जो कार्य बुद्धि और विवेकपूर्वक समझकर किया जाता है, उसमें उतनी ही कुशलता एवं यथार्थता निहित होती है। जब किसी क्रिया को मस्तिष्क स्वीकार कर लेता है, तो मन का उससे साम्य हो जाता है, तभी उस कार्य के प्रति उसकी आस्था सन्देह से परे निर्विवाद सत्य के रूप में स्थापित हो जाती है। **सामाजिक संगठन की सुदृढ़ता के लिये विचारात्मक समन्वय एवं परस्पर सामंजस्य परम आवश्यक है। एतदर्थ जहाँ जिस पद्धति या आम्नाय को मान्यता प्राप्त है, वहाँ तदनुरूप ही व्यवहार करें तथा उनके विचारों को आदर व सम्मान प्रदान करें। आलोचना या विवेचना करने से विवाद उत्पन्न होंगे तथा मन में मलिनता फैलेगी। मेरी राय में तो अपनी मान्यता एवं श्रद्धानुसार हम स्वयं आचरण करें तथा उतनी ही स्वतंत्रतापूर्वक अन्यों को भी उनकी परम्परानुसार व्यवहार करने दें। हाँ! क्षण-प्रतिक्षण सत्यान्वेषी बनकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयासरत रहें।**

पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी
पूर्व विधायक म.प्र.
64/3, मल्हारगंज, इन्दौर-2,

I have received every issue of **'जिनभाषित'** the content of which reflects the true sense of its title. I had written earlier a letter expressing my appreciation of the same and also my gratitute and thankfulness for your kindness in sending the same, and I do not know wheather the same has reached you or not.

Every article that has appeared in this admirable magazine gives insight into the subject related to our religion and society. **Presently I have great appreciation for the article 'दोनों पूजापद्धतियाँ आगम सम्मत' as the same is effective in bringing harmony between बीसपन्थी and तेरहपन्थी.** However in south, since ancient times the puja performed is akin to the puja of बीसपन्थी and there is no तेरहपन्थी puja system. But now a days the pooja system current here is opposed, or rather I should say, denigrated by the followers of Kanaji Panth and no such harmony can be expected, because the latter do not accept any such scriptural statement which goes against their own views, and based on this issue cleavage and group-formation has been developed in every town where there is Jain Population, which in fact is a pathetic development. Thanking you

M.D. Vasanth Raj
No. 86, 9th Cross, Naviluraste
Kuvempunagara, Mysore- 570023

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं जिनभाषित का नियमित पाठक हूँ। जिनभाषित जैन संस्कृति की सम्पूर्ण एवं उच्च कोटि की पत्रिका है। जैन संस्कृति के विविध व्यावहारिक एवं लोकोपयोगी पक्षों को समाहित कर आप प्रत्येक अंक को पूर्णता एवं भव्यता प्रदान करते है।

जिनभाषित मई, 2002 में प्रकाशित संपादकीय 'दोनों पूजा पद्धितियाँ आगम सम्मत' पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। इस संपादकीय ने आगम के आधार पर समन्वयात्मक चिंतन के लिए नए वस्तुनिष्ठ आयाम दिए हैं। हमारे आध्यात्मिक संतों और वरिष्ठ विद्वानों द्वारा जैन धर्म में अन्तर्निहित इसी प्रकार के समन्वयात्मक बिन्दुओं का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। नीर-क्षीरं के विवेक से ओतप्रोत आपका यह संपादकीय अत्यधिक दूरदृष्टिपरक है। प्रत्येक गृहस्थ को अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए सामाजिक रूप से स्वीकृत निम्नांकित दो पूजन पद्धतियाँ उपलब्ध हैं-

1. सचित्त द्रव्यात्मक पूजापद्धति जिसमें पापबंध अल्प और पुण्य बन्ध अधिकतम होता है।

2. अचित्त द्रव्यात्मक तेरहपन्थी पूजा विधि जिसमें पाप बन्ध अल्पतम और पुण्य बन्ध अधिकतम होता है।

अर्थात् दोनों पद्धतियों के द्वारा पूजन करने से पुण्य बंध तो समान ही होता है केवल हिंसा एक में अल्प और दूसरी में अल्पतम होती है। **हम अपनी रुचि और अपने परिवार की परम्परा के आधार पर किसी भी पद्धति से पूजन करने के लिए स्वतंत्र हैं। हम अपने विवेक के आधार पर अपनी पूजन पद्धति का चुनाव करें और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपनाई जा रही पूजन पद्धति का किसी प्रकार से विरोध न करें। इस ढंग से हम देश के समक्ष जैन धर्म के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त अहिंसा एवं अनेकांत का प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत कर सकेंगे। यदि जैन समाज अपने विभिन्न घटकों के बीच ही अपने आधारभूत सिद्धान्तों-अहिंसा, अनेकांत एवं स्याद्वाद के व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सका तो हम विश्व के समक्ष इन सिद्धान्तों को प्रभावी ढंग से कैसे प्रस्तुत कर सकेंगे?** अब यह आवश्यक है कि हमारा आध्यात्मिक एवं सामाजिक नेतृत्व अपने विचार और चिंतन को नये आयाम दे, जैन धर्म के शाश्वत एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं मूल्यों को स्वयं आत्मसात् करने के जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करे और पंथ का रूप लेते मतभेदों को समाप्त करने के लिए अपनी साहसिक, सामयिक, प्रभावी एवं समाज-उपयोगी सलाह दे।

मुझे विश्वास है कि आपके संपादकत्व में इसी प्रकार की विवेकपूर्ण एवं स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित, पुष्पित एवं फलित होती रहेंगी।

सुरेश जैन, आई.ए.एस.
30, निशात कॉलोनी, भोपाल, म.प्र.

'जिनभाषित' बराबर मिल रहा है। आपके द्वारा सम्पादित 'जिनभाषित' में अच्छे विचार एवं समाचार आते हैं। पिछले अंक में आपने बीसपन्थ और तेरहपन्थ के सामंजस्य के बारे में बड़ा ही सुन्दर लेख लिखा है। सभी लोग इसको पढ़कर भ्रम दूर करेंगे तथा आपस में भाईचारे से रहेंगे। वास्तव में पूजा पद्धति का भेद कोई भेद नहीं है। जिसकी जैसी परम्परा है उसको उसी के द्वारा धर्मवृद्धि करनी चाहिए।

महावीर प्रसाद जैन लालासवाला
3, देवीपुरा कोठी सीकर (राज.)

अचानक आठ दिन पूर्व मन्दिर जी में पिछले वर्ष की माह मई की 'जिनभाषित' पत्रिका मेरी पुत्रवधू को मिली। वह मेरे पढ़ने के लिए ले आयी। 'जिनभाषित' तो जिनभाषित ही है। बहुत अच्छी और उपयोगी लगी। आपका सृजन गुणवत्तात्मक एवं अत्युत्तम है।

ज्ञानमाला जैन
A-332, ऐशबाग, भोपाल

मैनपुरी में अतीव धर्म प्रभावना

परमपूज्य संत शिरोमणि आ. श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य पूज्य मुनि श्री समतासागर जी, पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी एवं ऐलक श्री निश्चयसागर जी का कन्नौज पंच कल्याणक के पश्चात् मैनपुरी आगमन 31 मई को हुआ। समाज ने उत्साहपूर्वक गाजे बाजे के साथ स्वागत किया। संघ का प्रवास बड़े जैन मंदिर जी में हो रहा है। दि. 5 जनू से 15 दिवसीय ज्ञान विद्या शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

शिक्षण शिविर में प्रातः जैन सिद्धान्त शिक्षण की कक्षा श्री प्रमाण सागर जी द्वारा, दोपहर को वृहद् द्रव्य संग्रह की कक्षा मुनि श्री समता सागर जी द्वारा तथा समयसार की कक्षा मुनि श्री प्रमाण सागर जी द्वारा ली जाती थी। शाम को आचार्यभक्ति व आरती के पश्चात् शंका समाधान तथा मेरी भावना की कक्षायें होती थीं। ऐलकश्री बच्चों की कक्षा लेते थे। 9 जून को संघ के सान्निध्य में भगवान. शांतिनाथ का निर्वाण कल्याणक मनाया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दुत्व और जैन समाज

अजितप्रसाद जैन, लखनऊ

दिनांक 4 अप्रैल के दैनिक जागरण के सम्पादकीय लेख 'हिन्दुत्व और जैन समाज' में समाज की धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता का विरोध करते हुए उसे राजनीतिक, आर्थिक कारणों से प्रेरित तथा हिन्दुत्व विरोधी ही नहीं भारतीयता व मानवता विरोधी भी बताया गया है। इस संभावना का भी भय दिखाया गया है कि इस माँग से भारतीयता तो क्षतिग्रस्त होगी ही, जैन समाज भी दुर्बल होगा, उसके लिए ऐसी भी समस्याएँ पैदा हो सकती हैं जो उसके हित में नहीं होंगी। परोक्षरूप से जैन समाज को यह नेक सलाह दी गई है कि वह सर्वोच्च न्यायालय में दायर अपनी याचिका को, जिस पर आजकल सुनवाई चल रही है, वापस ले ले।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि जैन समाज कोई जाति विशेष नहीं है, न ही वह आर्थिक, शैक्षिक व बौद्धिक दृष्टि से कोई पिछड़ा वर्ग है, जिसे अपने उत्थान के लिए आरक्षण जैसी सरकारी वैशाखियों की जरूरत पड़े। जैन समाज की प्रतिभाएँ अपने बलबूते पर ही प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में अपना उल्लेखनीय योगदान कर रही हैं।

जैनधर्म, वैदिक धर्म तथा उसके आधुनिक रूप हिन्दू धर्म रूपी वट वृक्ष की कोई शाखा नहीं है। यह एक सर्वथा पृथक् एवं स्वतंत्र आत्मवादी धर्म है, जिसके उपास्य देव, उपासना पद्धति, धार्मिक क्रियायें, धार्मिक पर्व, दर्शन, सिद्धान्त, स्याद्वाद, हिन्दू धर्म से सर्वथा भिन्न और विशिष्ट हैं तथा जिसकी श्रमण संस्कृति की जडें प्राग्वैदिक हैं और सभ्यता के आदि युग में हुए प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव तक जाती हैं। जैन धर्मावलम्बियों की संख्या देश की कुल जनसंख्या का 1 प्रतिशत से भी कम है, जो पारसियों के बाद सबसे अधिक अल्पसंख्यक धार्मिक वर्ग है। मंडल कमीशन ने भी जैनों को अहिन्दू धार्मिक समुदाय में वर्गीकृत किया है।

पूर्ण अहिंसक एवं शांतिप्रिय जैन समाज सदा ही सामाजिक समरसता का प्रबल पोषक रहा है। धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता की उसकी माँग के पीछे बृहद् हिन्दू समाज से अलगाव की कोई भावना कतई नहीं है। उस पर ये लांछन लगाना उपहासास्पद है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ की राज्य सरकारों ने जैन समाज की माँग के औचित्य को स्वीकार कर उसे धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता प्रदान कर दी है। उन प्रदेशों में जैन समाज का बृहद् हिन्दू समाज से अलगाव रंचमात्र नहीं हुआ है और न ही अलगाव होने की कोई संभावना है। समाज और धर्म दोनों के धरातल अलग-अलग हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 29-30 में, जिनके अन्तर्गत जैन समाज को धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता दिये जाने की याचिका सर्वोच्च न्यायालय के विचाराधीन है, अल्पसंख्यकों को केवल उनकी विशिष्ट संस्कृति को अक्षुण्ण रखने तथा अपनी शिक्षा संस्थाओं के प्रबंधन में कुछ स्वतंत्रता की ही व्यवस्था है, किसी भी प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक संरक्षण का कोई उल्लेख नहीं है। 'जागरण' जनमत में 47 प्रतिशत पाठकों का जैन समाज की माँग का समर्थन करना भी माँग के औचित्य को सिद्ध करता है।

हम नीचे कुछ दृष्टान्त अति संक्षेप में दे रहे हैं जिनसे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जायेगा कि जैन समाज धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग की मान्यता की आवश्यकता क्यों महसूस करता है।

- अभी गत 13 मार्च को जालोर दुर्ग (राजस्थान) के स्वर्णगिरि जैन तीर्थक्षेत्र में घुसकर धर्मद्वेषियों ने अकारण ही अनेक तीर्थंकर प्रतिमाओं को तोड़फोड़ डाला।
- राजस्थान के मारवाड़ अंचल में अनोप मंडल नाम का एक हिन्दू अतिवादियों का संगठन सक्रिय है, जो अपने को जैनधर्म का कट्टर विरोधी घोषित करने में गौरवान्वित महसूस करता है। दिनांक 14 सितम्बर 1997 को अनोप मंडल के नेतृत्व में 5000 की आतंकवादी भीड़ ने जालोर में अकारण ही जैनियों के एक उपाश्रय व तीन दुकानों को लूट लिया, एक कार को आग लगा दी, एक अन्य उपाश्रय व जैन छात्रावास में तोड़फोड़ की, जैन परिवारों के घरों में पत्थर फेंके तथा तीर्थक्षेत्र की मान्यता प्राप्त एक विशाल भव्य जैन मंदिर में घुसकर मूर्तियों को तोड़-फोड़ डाला।
- तीर्थक्षेत्र गलियाकोट (सागरवाड़ा राज.) में गुंडई तत्त्वों ने 700-800 वर्ष पुरानी बहुमूल्य कलाकृतियों को नष्ट किया तथा कुछ को लूट ले गए। राजस्थान में ही विहार कर रही एक साध्वी का अपहरण कर लिया गया तथा जैन मुनियों के विहार में बाधा डाली गई।
- जैनों के कुछ तीर्थक्षेत्रों पर पंडे-पुजारियों ने दबंगई से जबरन कब्जा करके उन्हें अपने धंधे का साधन बना लिया।

अभी दो वर्ष पूर्व बदरीनाथ धाम में जिसके एक शिखर से प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने मोक्षगमन किया माना जाता है, जैन समुदाय की विधिवत खरीदी हुई अपनी जमीन में निर्माण कराई गई जैन धर्मशाला में जैन यात्रियों की उपासना हेतु भगवान् ऋषभदेव की भव्य पद्मासनस्थ प्रतिमा प्रतिष्ठित करने की योजना स्थानीय पंडों, पुजारियों, महंतों के प्रबल विरोध के कारण त्यागना पड़ी। एक संतजी ने आत्मदाह की तथा देशव्यापी आन्दोलन छेड़ने की धमकी दी तथा बदरीनाथ में जैन मंदिर के निर्वाण को अनैतिक करार दिया गया। ज्योतिपीठ के शंकराचार्य जैसे हिन्दू धर्म के शीर्ष गुरु ने इसे बदरीनाथ धाम की गरिमा व पवित्रता को क्षति करने वाला उपक्रम बताया, उत्तरांचल के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री नित्यानंद स्वामी ने भी जोशीमठ में घोषणा कर डाली कि बदरीनाथ धाम में भगवान् बदरीनाथ के अलावा किसी भी वर्ग के मंदिर का निर्माण नहीं होने दिया जायेगा। हम नहीं समझ पा रहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं कि क्या बदरीनाथ भारतवर्ष के बाहर कोई ऐसा सुरक्षित भूखंड है, जहाँ देश के सामान्य नियम-कानून नहीं लागू होते। बदरीनाथ प्रकरण की विस्तृत रिपोर्टिंग तो 'दैनिक जागरण' के जुलाई, अगस्त, सितम्बर व अक्टूबर 2000 के कई अंकों में भी प्रकाशित हुई, पर उनके किसी सम्पादकीय लेख में या अन्य किसी हिन्दू मनीषी द्वारा किसी लेख में इस अतिवादी हिन्दू धर्मान्ध मानसिकता की निन्दा या विरोध में दो पंक्ति भी लिखीं हमारे देखने में नहीं आईं। न ही उपरिलिखित किसी भी घटना का किसी विख्यात हिन्दू नेता या धर्म गुरु ने विरोध किया हो हमारे देखने पढ़ने में नहीं आया। विस्मय होता है कि क्या यही हिन्दुत्व की उदात्त भूसांस्कृतिक अवधारणा का व्यावहारिक रूप है?

यदि किसी मान्यता प्राप्त वर्गीकृत अल्पसंख्यक धार्मिक समुदाय की धार्मिक भावनाओं को आहत किया गया होता, तो विरोधी राजनीतिक पार्टियों ने संबंधित प्रदेश सरकार की बर्खास्तगी की माँग लेकर देशव्यापनी आन्दोलन खड़ा कर दिया होता।

अब से 5 वर्ष पहिले भी जब राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने जैन समुदाय को अल्पसंख्यक धार्मिक वर्ग की सूची में शामिल किए जाने के लिए अपनी संस्तुति भेजी थी, तो हिन्दू समाज के एक वर्ग में इसीप्रकार खलबली मच गई थी तथा बालकवि वैरागी सरीखे जैन समाज के तथाकथित शुभचिन्तक हिन्दू नेताओं ने जैन समाज से आयोग की इस पहल का विरोध करने की अपील तक कर डाली थी तथा केन्द्र सरकार को भी आयोग की संस्तुति को न मानने की या ठंडे बस्ते में डाल देने की सलाह दी थी।

समन्वयवाणी
जून 2002 (द्वितीय पक्ष) से साभार

अहिंसा पर हमला

जे.के. संघवी

एक तरफ भगवान् महावीर के 2601वें जन्मोत्सव मनाने हेतु अन्तिम तैयारियाँ चल रही थीं। दूसरी तरफ जन्मकल्याणक दिवस के ठीक एक दिन पहले 24 अप्रैल, 2002 को अहिंसा के पुजारी, जीवदया-प्रेमी, सुश्रावक श्री ललित जैन (उम्र 31 वर्ष, एडवोकेट) की भिवंडी (जिला-ठाणें) में दिन के 11.30 बजे भरे बाजार में कसाइयों ने गोली मार कर नृ:शंस हत्या कर दी। सरकार द्वारा घोषित 'अहिंसा-वर्ष' के समापन पर अहिंसा पर क्रूर/बर्बर हमला हुआ। क्या केन्द्र अथवा राज्य सरकार इस काले कलंक को अपने सिर से मिटा पायेगी?

जीवदया, करुणा श्री ललितभाई के रग-रग में बसी हुई थी। सामायिक, प्रतिक्रमण, रात्रि-भोजन-त्याग आदि नियमों का जीवन में पालन करते हुए वे वकालत करते थे। एनिमल प्रिवेन्शन एक्ट 1976 के अनुसार गैर-कायदे कत्लखाने ले जाते हुए पशुओं को बचाने का वे सतत् प्रयत्न करते थे। इस अभियान में पिछले आठ वर्षों में कानून को ताक में रखने वाले लोगों पर 200 से ज्यादा केस दर्ज कर उन्होंने 5000 से ज्यादा पशुओं की जान बचायी।

यह विडम्बना है कि राजनेताओं, पुलिस और कसाइयों के गठबन्धन के कारण कानून को घोल कर पिया जा रहा है और गैर कानूनी कत्ल का धंधा पनप रहा है। पहले भी जीवदया के कार्यकर्ताओं पर हमले हुए हैं। 27 अगस्त, 1993 को अहमदाबाद में गीताबेन बी.रांभीया (उम्र 33 वर्ष) को दो कसाइयों ने रिक्शे से बाहर खींच कर छुरे द्वारा 19 वार कर निर्मम हत्या की थी। अल्पायु में उन्होंने 70,000 मूक प्राणियों के प्राण-बचाये थे। ऐसी क्रूर हत्या के बाद भी सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया। हायवे रोड डोसा पर 7 अक्टूबर, 1997 को जीवदया के कार्यकर्त्ता श्री भरतभाई कोठारी पर प्राणघातक हमला किया गया था। कसाई तो वहीं मरा हुआ समझ कर उन्हें छोड़ गये थे, लेकिन पुण्योदय से 4-5 महीने हॉस्पिटल में इलाज के बाद उनका जीवन बच पाया। राजपुर-डोसा में जीवदया का कार्य करने वाले श्री प्रकाश भाई शाह पर 2 अप्रैल, 2000 को हमला किया गया था। जीवन-मृत्यु का संघर्ष करते हुए 20 अप्रैल, 2000 को जीवदया के लिए वे शहीद हो गये। बाड़मेर, फलौदी, अहमदाबाद आदि में जीवदया के लिए समर्पित कार्यकर्त्ताओं की हत्याओं के मामले भी प्रकाश में आये हैं।

एडवोकेट श्री ललित जैन एवं अन्य कार्यकर्ताओं की शहादत ने यह साबित कर दिया है कि हिंसा-का-दौर पराकाष्ठा पर है और सरकार विदेशी मुद्रा के लोभ-लालच में उसे लगातार बढ़ावा दे रही है। हमलावरों को सजा न मिलने के कारण उनके हौंसले बढ़ रहे हैं। अवैध पशु-व्यापार में घोर मुनाफे के कारण रिश्वत आदि का दौर चलने से सरकारी मशीनरी द्वारा भी कानूनों को ताक पर रखा जाता है।

तय है कि समय रहते सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया और इन्सानियत के विरुद्ध वह निरन्तर हिंसा को कृषि के छद्म नाम के अन्तर्गत शाबासी देती गयी, तो एक दिन इस भारत की वसुन्धरा पर हिंसा का जो नग्न तांडव होगा, उस पर अंकुश पाना असंभव होगा। आज भी जो रक्तपात हो रहा है, उसकी पृष्ठभूमि पर पशुओं का व्यापक वध और हिंसामूलक उद्योगों को बढ़ावा देना है।

यदि जनता और सरकार दोनों ने इस भयावह घटना से कोई सबक नहीं लिया, तो वह दिन दूर नहीं जब देश में हिंसक/बर्बर ताकतों का बोलबाला होगा। करुणा, संवेदना, प्रेम, भाईचारा, इन्सानियत-ये शब्द मात्र शब्दकोश में रह जाएँगे। अनैतिकता, अराजकता का काला साया इस पृथ्वी पर नजर आयेगा।

'तीर्थंकर', जून 2002 से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

मूकमाटी : एक उत्कृष्ट महाकाव्य

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् जो उक्ति सहृदय को भावमग्न कर दे, मन को छू ले, हृदय को आन्दोलित कर दे, उसे काव्य कहते हैं। काव्य की यह परिभाषा साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने की है, जो अत्यन्त सरल और सटीक है।

ऐसी उक्ति की रचना तब होती है जब मानवचरित, मानव आदर्श एवं जगत् के वैचित्र्य को कलात्मक रीति से प्रस्तुत किया जाता है। कलात्मक रीति का प्राण है भाषा की लाक्षणिकता एवं व्यंजकता। भाषा को लाक्षणिक एवं व्यंजक बनाने के उपाय हैं: अन्योक्ति, प्रतीकविधान, उपचारवक्रता, अलंकार-योजना, बिम्बयोजना, शब्दों का सन्दर्भविशेष में व्यंजनामय गुम्फन आदि। शब्दसौष्ठव एवं लयात्मकता भी कलात्मक रीति के अंग हैं। इन सबको आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति नाम दिया है। कलात्मक अभिव्यंजना में ही सौन्दर्य होता है। सुन्दर कथन प्रकार का नाम ही काव्यकला है। रमणीय कथनप्रकार में ढला कथ्य काव्य कहलाता है। 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् (पंडितराज जगन्नाथ), सारभूतोह्यर्थः स्वशब्दानभिधेयत्वेन प्रकाशितः सुतरामेव शोभामावहति' (ध्वन्यालोक/उल्लास, 4), ये उक्तियाँ इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। विषय हो मानवचरित, मानव-आदर्श या जगत्स्वभाव तथा अभिव्यंजना हो कलात्मक तभी काव्य जन्म लेता है। इनमें से एक का भी अभाव हुआ तो काव्य अवतरित न होगा। विषय मानवचरित मानव-आदर्श या जगत्स्वभाव हुआ, किन्तु अभिव्यंजना कलात्मक न हुई तो वह शास्त्र, इतिहास या आचारसंहिता, बन जायेगा, काव्य न होगा। इसके विपरीत अभिव्यंजना कलात्मक हुई और विषय मानवचरित, मानव-आदर्श या जगत्स्वभाव न हुआ तो प्रहेलिका बन जायेगी, उसमें काव्यत्व न आ पायेगा।

महाकवि आचार्य विद्यासागर जी द्वारा रचित 'मूकमाटी' के काव्यत्व को इसी कसौटी पर कसकर परखना होगा। इस कसौटी पर कसने से उसमें काव्य के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

कथावस्तु

अर्थहीन तुच्छ माटी का कुम्भकार के निमित्त से कुंभ का सुन्दर रूप धारण करना और जलधारण तथा जलतारण (नदी आदि को पार करना) द्वारा परोपकारी बनना, यह इस काव्य की कथावस्तु है, जो देवशास्त्रगुरु के निमित्त से बहिरात्मत्व से परमात्मत्व अवस्था की प्राप्ति का प्रतीक है। 'श्रेयांसि बहुविध्नानि' नियम की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए कुंभदशा की प्राप्ति में सागर द्वारा जलवर्षा और उपलवृष्टि के विघ्न उपस्थित कराये गये हैं। सज्जन सदा दूसरों के विघ्ननिवारण में तत्पर रहते हैं, यह दर्शने के लिए सूर्य और पवन के द्वारा मेघों के छिन्न-भिन्न किये जाने की घटना कल्पित की गई है। बिना तप के जीवन में परिशुद्धता एवं परिपक्वता नहीं आती, इस तथ्य के प्रकाशन हेतु कुम्भ को आवा में तपाये जाने का दृश्य समाविष्ट किया गया है। योग्य बनकर मनुष्य दूसरों के उपकार में अपना जीवन लगाता है, इस आदर्श के दर्शन कराने हेतु घट के द्वारा मुनि के लिए आहारदान के समय जलभरण तथा संकट की स्थिति में अपने स्वामी को नदी पार कराये जाने की घटनाएँ बुनी गई हैं।

विभिन्न उपदेशों और सिद्धान्तों के प्रतिपादन का प्रसंग उपस्थित करने के लिए अनेक तिर्यंचों और जड़ पदार्थों को पात्रों के रूप में कथा से सम्बद्ध किया गया है।

इस कथा की धारा में उत्तम काव्य के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं और काव्यकला के अनेक उपादानों का सटीक प्रयोग भी मन को मोहित करता है। उन सब पर एक दृष्टि डालना सुखकर होगा।

भावों की कलात्मक अभिव्यंजना

कृति के आरम्भ में ही मानवीकरण द्वारा प्रभात का मनोहारी वर्णन हआ है। सूर्य और प्राची, प्रभाकर और कुमुदिनी, चन्द्रमा और कमलिनी, इन्दु और तारिकाओं पर नायकनायिका के व्यापार का आरोप कर शृंगाररस की व्यंजना की गई है-

लज्जा के घूँघट में / डूबती सी कुमुदिनी
प्रभाकर के कर-छुवन से / बचना चाहती है/
अपने पराग को / सराग मुद्रा को/
पाँखुरियों की ओट देती है। (पृ. 62)

सहृदयों के सम्पर्क में रहने पर भी हृदयहीनों में सहृदयता का आविर्भाव असम्भव है, इस स्वजातिर्दुरतिक्रमा का घोष करने वाले मनौवैज्ञानिक तथ्य की व्यंजना कंकरों की प्रकृति के द्वारा कितने मार्मिक ढँग से हुई है। अन्योक्ति या प्रतीकात्मक काव्य का यह सुन्दर नमूना है। लाक्षणिक प्रयोगों से इस काव्य की हृदयस्पर्शिता द्विगुणित हो गई है-

अरे कंकरो/माटी से मिलन तो हुआ/पर माटी से मिले
नहीं तुम/माटी से छुवन तो हुआ/पर माटी में घुले
नहीं तुम/इतना ही नहीं, चक्की में डालकर पीसने पर भी/
अपने गुण-धर्म भूलते नहीं तुम/भले ही चूरण बनते रेतिल/
माटी नहीं बनते तुम/जल के सिंचन से भीगते भी हो, परन्तु
भूलकर भी फूलते नहीं तुम/माटी सम तुम में आती नमी
नहीं/क्या यह तुम्हारी है कमी नहीं? तुम में कहाँ है
वह जलधारण की क्षमता? जलाशय में रहकर भी
युगों-युगों तक नहीं बन सकते जलाशय तुम/मैं तुम्हें हृदयशून्य तो
न कहूँगा/परन्तु पाषाणहृदय है तुम्हारा/

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों का दुःखदर्द देखकर भी/नहीं आ सकता जिसे
पसीना/है ऐसा तुम्हारा सीना/ (पृ. 49-50)

दुष्ट प्रकृति के लोग धर्म का उपयोग अपने को सुधारने में न कर साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाकर निहित स्वार्थों की सिद्धि में करते है। इस मानवस्वभाव की हृदय को मथ देनेवाली कलात्मक अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में हुई है-

कहाँ तक कहें अब/धर्म का झण्डा भी डण्डा बन जाता है/
शास्त्र शस्त्र बन जाता है अवसर पाकर/
और प्रभु-स्तुति में तत्पर सुरीली बाँसुरी भी।
बाँस बन पीट सकती है/ प्रभुपथ पर चलने वालों को/
समय की बलिहारी है/ (पृ.-73)

धर्म के झंडे के साथ 'झण्डा' तथा शास्त्र के साथ 'शस्त्र' शब्द असीम अर्थ के व्यंजक बन गये हैं। धर्म के नाम पर घटे और घट रहे दुनिया के सारे रक्तरंजित इतिहास को वे प्रत्यक्ष कर देते हैं।

सांसारिक विषयों के प्रति जब आकर्षण समाप्त हो जाता है, लाभ-हानि, निन्दा-प्रशंसा, जय-पराजय दोनों ही जब अर्थहीन प्रतीत होने लगते हैं तब आत्मा में शान्ति का संगीत पैदा होता है, क्षोभ विलीन हो जाता है, समभाव का उदय होता है। इस प्रकार संग अर्थात् सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति से अतीत होने पर ही वास्तविक संगीत उत्पन्न होता है। यह महान् मनोवैज्ञानिक तथ्य हृदय को आन्दोलित कर देने वाले निम्न शब्दों में अत्यन्त कलात्मक रीति से अभिव्यक्त हुआ है-

संगीत उसे मानता हूँ/ जो संगातीत होता है/
और प्रीति उसे मानता हूँ/ जो अंगातीत होती है।

• • •

सुख के बिन्दु से ऊब गया था यह
दुःख के सिन्धु में डूब गया था यह।
कभी हार से सम्मान हुआ इसका
कभी हार से अपमान हुआ इसका।
कहीं कुछ मिलने का लोभ मिला इसे
कहीं कुछ मिटने को क्षोभ मिला इसे।
कहीं सगा मिला, कहीं दगा
भटकता रहा अभागा यह।
परन्तु आज सब वैषम्य मिट से गये हैं
जब से मिला यह मेरा संगी संगीत। (पृ. 145-146)

इस काव्य से अनेक अर्थकिरणें प्रस्फुटित होती हैं। जिस प्रेम का केन्द्र शरीर होता है, वह प्रेम नहीं, वासना है। गुणाश्रित प्रेम ही प्रेम है। संसार में सुख बिन्दु बराबर है और दुःख सिन्धु बराबर। 'हार' शब्द दोनों जगह भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम बार उसका अर्थ है 'फूलों का हार', द्वितीय बार 'पराजय'। यहाँ यमक अलंकार ने अपनी स्वाभाविकता के कारण चार चाँद लगा दिये हैं। बिन्दु-सिन्धु, सम्मान-अपमान, मिलने-मिटने, लोभ-क्षोभ, सगा-दगा, इन प्रयोगों में अन्त्यानुप्रास ने संगीतात्मक श्रुतिमाधुर्य की सृष्टि की है।

भगवान् आदिनाथ द्वारा उपदिष्ट मोक्षमार्ग की आजकल चर्चा बहुत होती है। उसका हृदयद्रावक प्रवचन करने वाले प्रवचनकर्त्ता बरसाती मेंढकों के समान प्रकट हो गये हैं। किन्तु वे मोक्षमार्ग की केवल बात ही करते हें, उस पर चलते नहीं है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति निम्न शब्दों में बड़ी पैनी हो गई है-

आदिनाथ से प्रदर्शित पथ का
आज अभाव नहीं है माँ !
परन्तु उस पावन पथ पर
दूब उग आई है।
वर्षा के कारण नहीं,
केवल कथनी में करुणरस घोल,
धर्मामृत-वर्षा करनेवालों की भीड़ के कारण
(पृ. 151-152)

जिस मार्ग पर लोग चलना छोड़ देते हैं उस पर दूब उग आती है। अत: 'दूब उग आई है' मुहावरा 'लोगों ने मोक्षमार्ग पर चलना छोड दिया है' इस अर्थ की अभिव्यक्ति में कितना प्रभावशाली हो गया है!

होश को खोकर भी चिन्तामुक्त हुआ जा सकता है और होश में आकर भी। इन दोनों उपायों में क्या फर्क है? इस रहस्य को इस प्रकार खोला गया है कि एक उपाय के प्रति जुगुप्सा और दूसरे के प्रति श्रद्धा की धाराएँ मन में प्रवाहित होने लगती हैं। यह 'शव' और 'शिव' शब्दों का कमाल है।

इस युग के दो मानव/अपने आप को खोना चाहते हैं/
एक भोग-राग को/मद्यपान को चुनता है/
और एक योग-त्याग को/आत्मध्यान को धुनता है/
कुछ ही क्षणों में/दोनों होते हैं विकल्पों से मुक्त/
फिर क्या कहना! एक शव के समान निरा पड़ा है।
और एक शिव के समान खरा उतरा है। (पृ. 286)

शरीर नहीं, आत्मा मूल्यवान् है अत: आत्मा ही उपास्य है। इस आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यंजना सीप और मोती तथा दीप और ज्योति के प्रतीकों द्वारा करने वाली ये पंक्तियाँ उत्तम काव्य का निदर्शन हैं-

सीप का नहीं, मोती का
दीप का नहीं, ज्योति का
सम्मान करना है अब। (पृ. 307)

तत्त्वज्ञानी पुरुष आत्मा के बारे में केवल विचार करता है ध्यानी आत्मा का आस्वादान करता है। ज्ञान और ध्यान के अन्तर को प्रकाशित करनेवाले ये काव्यात्मक शब्द प्रतीकात्मक सौन्दर्य से मंडित हैं-

तैरनेवाला तैरता है सरवर में
भीतरी नहीं, बाहरी दृश्य ही दिखते हैं उसे।
वहीं पर दूसरा डुबकी लगाता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरवर का भीतरी भाग भासित होता है उस,

बहिर्जगत् का सम्बन्ध टूट जाता है। (पृ. 289)

मनुष्य की साधना यदि निर्दोष हो तो संसारसागर को पार करना असंभव नहीं है। सागर और नाव के प्रतीकों ने इस भाव को कितनी मार्मिक व्यंजना दी है-

अपार सागर का पार

पा जाती है नाव

हो उसमें छेद का अभाव भर। (पृ. 51)

विषयों की चाह इन्द्रियों को नहीं होती। वे तो जड़ हैं। इन्द्रियों के माध्यम से वासना ग्रस्त आत्मा ही विषयों की चाह करता है। रूपकालंकार में पिरोया गया यह भाव शोभा से निखर उठा है-

इन्द्रियाँ खिड़कियाँ हैं,

तन भवन है।

भवन में बैठा पुरुष

खिड़कियों से झाँकता है

वासना की आँखों से।

जो कठिनतम संकट को पार कर लेता है उसके लिए छोटे-मोटे संकट खिलौनों के समान हो जाते हैं। उपचारवक्रता के द्वारा अभिव्यक्त यह भाव कितना नुकीला हो गया है। बाढ़ से उफनती हुई नदी के बीच में चलता हुआ साधक कहता है-

जब आग की नदी को पार कर आये हम

और साधना की सीमा-श्री से

हार कर नहीं, प्यार कर आये हम

फिर भी हमें डुबोने की

क्षमता रखती हो तुम ? (पृ.452)

आग की नदी का यह उपचारवक्र प्रयोग संकट की विकटता का अहसास कराने में अद्‌भुत क्षमता रखता है। एक तो नदी अपने आप में संकट का प्रतीक है, फिर वह भी आग की? आग ने संकट को सहस्रगुना भयावह कर दिया है। इसी प्रकार साधना की चरमसीमा से, जहाँ हारना संभव हो, प्यार कर लेना साधना के अत्यन्त आनन्दपूर्वक सम्पन्न होने का द्योतक है। यहाँ भी उपचारवक्रता ने अपार सौन्दर्य का निवेश कर दिया है।

संसार-सन्ताप से मुक्ति की आकांक्षा बड़ी व्यग्रता से झाँक रही है शब्दों के इन सुन्दर झरोखों से-

कितनी तपन है बाहर और भीतर/

ज्वालामुखी हवाएँ / झुलसी काया/

चाहती है/ स्पर्श में बदलाहट ।

मानव-स्वभाव की यही विडम्बना है कि मनुष्य की दृष्टि सदा दूसरों को परखने में लगी रहती है। अपने को वह दूसरों से सदा ऊपर समझता है। यही उसके जहाँ का तहाँ रह जाने का कारण है। कवि की मुहावरामय काव्यकला इस तथ्य की ओर बड़े आह्लादक ढंग से ध्यान आकृष्ट करती है-

पर को परख रहे हो? अपने को परखो जरा/

परीक्षा लो अपनी/ बजा-बजा कर देख लो स्वयं को/

कौन सा स्वर उभरता है वहाँ/सुनो उसे अपने कानों से/

काक का प्रलाप है/या गर्दभ का आलाप? (पृ. 303)

पाप कर्म का फल प्रत्येक को भोगना पड़ता है, चाहे वह कोई भी हो। यह तथ्य व्यंजित किया गया है 'लक्ष्मण रेखा' 'राम' 'सीता' और 'रावण' के पौराणिक प्रतीकों से, जिससे अभिव्यक्ति कलात्मक बन गई है-

लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन

रावण हो या सीता,

राम ही क्यों न हों

दण्डित करेगा ही। (पृ. 217)

सन्त कवि की कवितामयी लेखनी से आहारदान के उत्तमपात्रभूत साधु का स्वरूप उपमाओं के मनोहर दर्पण से झाँकता हुआ मनहरण करता है-

पात्र हो पूत-पवित्र/पदयात्री हो, पाणिपात्री हो/

पीयूषपायी हंस-परमहंस हो/ अपने प्रति वज्रसम कठोर/

पर के प्रति नवनीत/पवनसम निःसंग/

दर्पणसम दर्प से परीत/पादपसम विनीत/

प्रवाहसम लक्ष्य की ओर गतिमान्/

सिंहसम निर्भीक। (पृ. 300)

पथ प्रकाशक सूक्तियाँ

मूकमाटी में जीवनपथ को आलोकित करनेवाले सूक्तिरत्न बिखरे पड़े हैं, जो मन को जगमगा देते हैं। कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं-

आस्था के बिना रास्ता नहीं,

मूल के बिना चूल नहीं। (पृ. 10)

●

संघर्षमयजीवन का उपसंहार

नियम से हर्षमय होता है। (पृ. 14)

●

दुःख की वेदना में जब न्यूनता आती है

दुःख भी सुख सा लगता है। (पृ. 18)

●

पीड़ा की अति ही

पीड़ा की इति है। (पृ. 33)

●

सब रसों का अन्त होना ही शान्तरस है। (पृ. 160)

तीर मिलता नहीं बिना तैरे। (पृ. 267)

सटीक मुहावरे

मुहावरे उपचारवक्रता (लाक्षणिक प्रयोग) के सुन्दर नमूने हैं। उनसे अभिव्यक्ति लाक्षणिक और व्यंजक बन जाती है जो काव्यकला का प्राण है। इस कारण उनमें हृदयस्पर्शिता एवं रमणीयता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहती है। आचार्यकवि ने मुहावरों का सटीक प्रयोग करके कथन को काव्यात्मक चारुत्व से मंडित किया है तथा अभिव्यक्ति को तीक्ष्ण बनाया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

अरे मौन! सुन ले जरा
कोरी आस्था की बात मत कर तू
आस्था से बात कर ले जरा। (पृ. 121)

यहाँ 'की बात मत कर' और 'से बात कर लें' इन दो मुहावरों ने 'कथनी' की निरर्थकता और 'करनी' की सार्थकता की अभिव्यंजना को सौन्दर्य के उत्कर्ष पर पहुँचा दिया है।

शिल्पी का दाहिना चरण
मंगलाचरण करता है। (पृ. 126)

कार्य आरम्भ करने के भाव की अभिव्यक्ति मंगलाचरण करने के मुहावरे से कितनी रमणीय बन गई है!

मानव खून उबलने लगता है
शान्त माहौल खौलने लगता है। (पृ. 131)

ये मुहावरे जन-आक्रोश तथा सामाजिक अशान्ति की पराकाष्ठा को अभिव्यक्ति देते हुए उक्ति को चारुत्व से मण्डित करते हैं।

प्रभाकर का प्रवचन हृदय को छू गया
छूमन्तर हो गया भाव का वैपरीत्य । (पृ. 207)

'हृदय को छू गया' मुहावरा प्रवचन की प्रभावशालिता तथा 'छूमन्तर हो गया' मुहावरा विपरीत बुद्धि के एकदम दूर हो जाने के भाव को कितने मनोहर ढँग से सम्प्रेषित करता है!

जब आँखें आती हैं तब दुःख देती हैं
जब आँखें जाती हैं तब दुःख देती हैं
जब आँखें लगती हैं तब दुःख देती है। (पृ. 359-360)

यहाँ भी मुहावरों के द्वारा अभिव्यक्ति की हृदयाह्लादकता उत्कर्ष पर पहुँच गई है।

औचित्यपूर्ण उपचारवक्रता

अचेतन पर चेतन के, चेतन पर अचेतन के, मूर्त पर अमूर्त के, अमूर्त पर मूर्त के, मानव पर तिर्यंचादि के, तिर्यंचादि पर मानव के धर्म का आरोपण उपचारवक्रता कहलाता है। यह वस्तु के गुणोत्कर्ष, भावों के अतिशय, उत्कटता, तीक्ष्णता, घटनाओं और परिस्थितियों की गंभीरता, चरित्र की उत्कृष्टता या निकृष्टता आदि की व्यंजना के लिए किया जाता है। इससे कथन मर्मस्पर्शी एवं रमणीय बन जाता है। मूकमाटी के कवि ने उपचारवक्रता का औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है, जिससे काव्यात्मक चारुत्व की सृष्टि हुई है। कुछ नमूने प्रस्तुत हैं-

भय को भयभीत के रूप में पाया।
विस्मय को बहुत विस्मय हो आया। (पृ. 138)
जो अपरस का परस करता है
क्या वह परस का परस चाहेगा? (पृ. 139)
(अपरस=स्पर्श से परे, चिन्मय, परस=अनुभव)
(परस=स्पर्शमय, पुद्गल)

रसना कब रस चाहती है?
नासा गन्ध को याद नहीं करती।
स्पर्श की प्रतीक्षा स्पर्शा कब करती है?
स्वर के अभाव में ज्वर कब चढ़ता है श्रवणा को?
(पृ. 328)

अभिव्यंजक अलंकार

कवि ने भावों की कलात्मक अभिव्यंजना के लिए जिन अलंकारों का प्रयोग किया है, उनमें अत्यन्त स्वाभाविकता है, वे बलपूर्वक आरोपित किये गये प्रतीत नहीं होते। वस्तु के स्वरूपवैशिष्ट्य को सम्यग्रूपेण व्यंजित करते हैं। यथा-

सिन्धु में बिन्दु सा
राहु के गाल में समाहित हुआ भास्कर। (पृ. 238)

सिन्धु में बिन्दु की उपमा से राहु की विशालकायता और उसके समक्ष सूर्य की लघुता का द्योतन औचित्यपूर्ण है।

निम्नलिखित उक्ति में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा द्वारा कुम्भ की बाह्य कालिमा का वर्णन बड़े रोचक ढँग से किया गया है-

आज अबा से बाहर आया है कुम्भ
कृष्ण की काया सी नीलिमा फूट रही है उससे
ऐसा प्रतीत हो रहा है कि
भीतरी दोषसमूह सब
जल-जलकर बाहर आ गये हों। (पृ. 298-299)

शब्दालंकारों में यमक के एक-दो सुन्दर उदाहरण हैं, जिनमें स्वाभाविकता के कारण अर्थवैभिन्न्यगत वैचित्र्य रोचक बन पड़ा है-

कभी हार से सम्मान हुआ इसका
कभी हार से अपमान हुआ इसका। (पृ. 145-146)

प्रथम 'हार' का अर्थ है 'फूलों का हार', द्वितीय का 'पराजय'।

ललित वर्ण विन्यास

संगीतात्मकता भी काव्य का एक गुण है। ललित वर्णविन्यास के द्वारा इसका आविर्भाव होता है। सन्तकवि इसके अत्यधिक प्रेमी हैं। वर्णों की आवृत्ति के द्वारा उन्होंने संगीतात्मक सौन्दर्य उत्पन्न करने का बहुशः प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा

अहित में हित और हित में अहित
निहित सा लगा इसे।

●

तन में तन का चिरन्तन नर्तन है।

●

काया तो काया है, जड़ की छाया-माया है।

●

खरा भी अखरा है सदा।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्वास का विश्वास नहीं अब।

•

नग्न अपने में मग्न बन गये।

रसात्मकता

महाकवि ने विभिन्न रसों के पुट से काव्य में कहीं-कहीं रस भरने का भी प्रयत्न किया है। आरंभ में ही सूर्य और प्राची, प्रभाकर और कुमुदिनी, चन्द्रमा और ताराओं पर नायक-नायिका के व्यापार का आरोप कर शृंगार रस की व्यंजना की है। अन्तिम खण्ड में भी निम्न पंक्तियाँ शृंगाररस की सामग्री प्रस्तुत करती हैं-

बाल भानु की भास्वर आभा
निरन्तर उठती चंचल लहरों में
उलझती हुई सी लगती है
कि गुलाबी साड़ी पहने
मदवती अबला सी स्नान करती-करती
लज्जावश सकुचा रही है। (पृ. 479)

प्रस्तुत अंश वात्सल्यरस के विभावों और अनुभावों से परिपूर्ण है-

और देखों ने माँ की उदारता, परोपकारिता
अपने वक्षस्थल पर युगों-युगों से, चिर से
दुग्ध से भरे दो कलश ले खड़ी है।
क्षुधा-तृषा-पीड़ित शिशुओं का पालन करती रहती है
और भयभीतों को, सुख से रीतों को
गुपचुप हृदय से चिपका लेती है, पुचकारती हुई
(पृ. 472)

भक्तिरस का अतिरेक निम्न पंक्तियों से छलकता है-

एक बार और गुरुचरणों में सेठ ने प्रणिपात किया।
लौटने का उपक्रम हुआ, पर तन टूटने लगा।
लोचन सजल हो गये, रोका, पर रुक न सका रुदन।
फूट-फूट कर रोने लगा,
पुण्यप्रद पूज्यपदों में लोट-पोट होने लगा। (पृ. 346)

आहारदान के प्रकरण में अपार श्रद्धा के पात्र मुनि को आहार देने के लिए श्रावकों की आतुरता का जो वर्णन किया गया है वह भक्तिरस से ओत-प्रोत है।

संसार की निस्सारता, जीवन की क्षणभंगुरता और परमात्म-तत्त्व की सारभूतता का वर्णन या इनकी अनुभूति का वर्णन शान्तरस के विभाव हैं। इनके वर्णन से पाठक के मन में सांसारिक विषयों के प्रति अनाकर्षण और अरुचि का भाव उद्बुद्ध होता है, जिससे इच्छानिरोधजन्य शमभाव की अनुभूति होती है। यही शान्तरस का आस्वादन है। प्रस्तुत काव्य में इसके कई जगह दर्शन होते हैं। श्रोत्रेन्द्रिय के विषय की निस्सारता के बोध की यह अभिव्यक्ति शान्तरस की व्यंजना करती है-

ओ श्रवण! कितनी बार श्रवण किया स्वर का?
ओ मनोरमा! कितनी बार स्मरण किया स्वर का?
कब से चल रहा है संगीत-गीत यह?
कितना काल अतीत में व्यतीत हुआ, पता तो, बता दो।
भीतरी भाग भीगे नहीं अभी तक
दोनों बहरे अंग रहे
कहाँ हुए हरे-भरे? (पृ. 144)

इष्ट और अनिष्ट में समभाव की अनुभूति का यह वर्णन शान्तरस का अप्रतिम उदाहरण है-

सुख के बिन्दु से ऊब गया था यह
दुःख के सिन्धु में डूब गया था यह।
कभी हार से सम्मान हुआ इसका
कभी हार से अपमान हुआ इसका।
कहीं कुछ मिलने का लोभ मिला इसे
कहीं कुछ मिटने का क्षोभ मिला इसे।
कहीं सगा मिला, कहीं दगा
भटकता रहा अभागा यह।
परन्तु आज सब वैषम्य मिट गये हैं
जब से मिला यह मेरा संगी संगीत। (पृ.146)

आहार-ग्रहण के समय मुनिराज के वीतरागस्वरूप का जो निरूपण किया गया है (पृष्ठ 326) वह भी शान्तरस का आस्वादन कराता है। आतंकवादियों के प्रकरण में रौद्र रस का प्रसंग भी है। कहीं बीभत्स और वीर की भी झलक मिलती है।

मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन

महाकाव्य में कई जगह मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। कंकरों के प्रसंग में 'स्वजातिर्दुरतिक्रमा' तथ्य उन्मीलित हुआ है। वडवानल का प्रकरण इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि आवश्यकता पड़ने पर सज्जन को भी उग्रता का आश्रय लेना पड़ता है। निम्न पंक्तियाँ भी एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य पर प्रकाश डालती हैं-

सीमा में रहना असंयमी का काम नहीं,
जितना मना किया जाता है
उतना मनमाना होता है, पाल्य दशा में।
त्याज्य का तजना, भाज्य का भजना संभव नहीं बाल्य दशा में।
तथापि जो पलता है, बस, बलात् भीति के कारण।
(पृ. 341)

पूर्ववर्णित सभी सूक्तियाँ मनोवैज्ञानिक तथ्यों का साक्षात्कार कराती हैं।

इस प्रकार भावों की कलात्मक अभिव्यंजना, सटीक मुहावरे, औचित्यपूर्ण उपचारवक्रता, अभिव्यंजक अलंकार ललितवर्णविन्यास, रसात्मकता, पथप्रदर्शक सूक्तिरत्न तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन, इन गुणों से 'मूकमाटी' महाकाव्य ने अपने को उत्कृष्ट काव्यों की पंक्ति में आसीन किया है। यह एक महामुनि के भीतर विराजमान महाकवि की देदीप्यमान प्रतिभा का अनूठा निदर्शन है।

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मान्वेषी : आचार्य श्री विद्यासागर

जीवन-परिचय एवं वचनामृत

मुनि श्री क्षमासागर

कर्नाटक प्रान्त के बेलगाम जिले में सदलगा नाम का एक गाँव है। आपका जन्म इसी सदलगा गाँव के निवासी श्री मल्लप्पाजी अष्टगे और श्रीमतीजी अष्टगे के परिवार में 10 अक्टूबर 1946 को शरद पूर्णिमा के दिन हुआ। आपका बचपन का नाम विद्याधर था। आपका परिवार धन-धान्य से सम्पन्न था। आपके पिता श्री मल्लप्पा जी अष्टगे अत्यन्त कर्मठ और ईमानदार कृषक थे, जो अपनी निजी भूमि में गन्ना, मूंगफली आदि की खेती किया करते थे। आपको धार्मिक-संस्कार अपने माता-पिता से मिले। जिनमन्दिर जाना, जिनवाणी का अध्ययन करना, मुनिजनों की सेवा करना, दान-पुण्य आदि धर्म कार्यों में सदा तत्पर रहना - यह आपके मात-पिता की सहज दिनचर्या थी। आपकी माता बड़ी सरल स्वभावी और श्रद्धालु महिला थीं। उनका अधिकांश समय व्रत, नियम और पूजा-पाठ में व्यतीत होता था। आपके जन्म के पूर्व आपकी माँ ने स्वप्न में दो ऋद्धिधारी मुनियों को आकाश मार्ग से आते देखा और अपने हाथों से उन्हें आहार भी दिया। मराठी में एक कहावत है- 'मनी बसे स्वप्ने दिसे'-मन में जैसे भाव होते हैं वैसा ही स्वप्न दिखाई देता है। आपको पाकर आपकी माँ की भावनाएँ साकार हो गईं।

विद्याध्ययन के प्रति आपकी रुचि बचपन से ही थी। घर से स्कूल तक तीन मील दूर आप कंधे पर बस्ता डाले पैदल ही चले जाया करते थे। आपने प्राथमिक और उच्च स्कूली शिक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। स्कूल से अवकाश मिलने पर आप घर में रहकर चौबीस तीर्थंकरों के नाम और 'भक्तामर' के श्लोक कण्ठस्थ किया करते थे। प्रतिदिन रात को भगवान् के दर्शन करके घर लौटने पर आप अपने छोटे भाई-बहनों को धर्म की अच्छी-अच्छी बातें सुनाया करते थे। अपने मधुर कंठ से स्तुति गाया करते थे। अपने दोनों छोटे भाइयों को गोद में लेकर आपने उन्हें सदा यही समझाया कि जीवन में सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र्य रूपी तीन रत्नों को प्राप्त करना ही श्रेष्ठ है।

आपको चित्रांकन का शौक था। रंगों का डिब्बा और तूलिका लेकर आप घर के किसी कोने में बैठकर बड़े जतन से अपनी कल्पना को अंकित करते थे। आपकी एकाग्रता, संवेदनशीलता कला-प्रवणता देखते ही बनती थी।

यौवन की देहरी पर पैर रखते ही आपका मन विषय-वासना से दूर रहकर समुद्र की अथाह जलराशि का आलिंगन करने और इस पार से उस पार जाने का हुआ करता था। यह शायद आपके कोमल हृदय में लहराते करुणा के अपार सागर की पुकार थी जो जीवन में साकार होती चली गई। आज आप भवसागर से पार उतारने वाले महानाविक हैं। लगभग नौ-दस बरस की उम्र में जब आप माता-पिता के साथ शेडवाल ग्राम में विराजे चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के दर्शन करने गए थे, तब आपके निश्छल-निर्मल मन में वीतरागता के प्रति सहज लगाव उमड़ पड़ा था। जो दिनोंदिन निरन्तर साधुसंगति पाकर बढ़ता ही चला गया। आपने बीस बरस की युवा अवस्था में संसार से विरक्त होकर गृह त्याग कर दिया और गुरु ज्ञानसागर जी मुनिराज के चरणों में रहकर जैनदर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य और अध्यात्म का ज्ञान अर्जित किया। अल्प वय में ही आपकी उच्च साधना और ज्ञान को देखकर गुरु ज्ञानसागरजी ने राजस्थान के अजमेर नगर में 30 जून 1968 को आपको दिगम्बर-मुनि दीक्षा प्रदान की। आप मुनिश्री विद्यासागर जी के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अँग्रेजी, मराठी, कन्नड़ आदि अनेक भाषाओं के जानकार हैं। आपने गुरुकृपा, आत्मनिष्ठा और सतत साधना के बल पर परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करने वाली आत्मविद्या को भी प्राप्त कर लिया है। वर्तमान में आप अपने विशाल मुनिसंघ के संघ-नायक / आचार्य हैं। आपकी कल्याण-वाणी में आत्मानुभूति की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। आपके चिन्तन में चेतना की ऊँचाई और साधना की गहराई है। आपकी मधुर-मुस्कान में आत्मा की सुगंध और सौंदर्य दोनों हैं। आपकी वीतराग-छबि से करुणा निरन्तर झरती रहती है। आपका समूचा व्यक्तित्व सूरज की रोशनी की तरह उज्ज्वल और तेजस्वी है।

आप अपने इन्द्रिय और मन पर विजय प्राप्त करने वाले निष्काम-साधक हैं। आप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की जीवन्त मूर्ति हैं। एक गहरी आत्मतृप्ति आपके चेहरे पर सदा बनी रहती है। भोजन में लवण का त्याग कर देने पर भी आपका भीतरी लावण्य अद्भुत है। मधुर रस से विरक्त होते हुए भी आपमें असीम माधुर्य है। स्निग्ध पदार्थों का त्याग होते हुए भी आपकी आंतरिक स्निग्धता देखते ही बनती है। समस्त फलों का त्याग करके मानो आपका जीवन स्वयं फलवान् हो गया है।

आप समुद्र की तरह अपार और अथाह हैं। जैसे सागर की विस्तृत असीम जलराशि हमें बरबस अपनी ओर आकृष्ट करती है और मानो स्वयं सागर होने का निमंत्रण देती है, ऐसे ही आपका सामीप्य आत्मानुभूति के महासागर में प्रवेश करने का आमंत्रण देता है। जैसे सागर में कितनी ही नदियाँ आकर विलीन हो जाती हैं और सागर कभी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता ऐसे ही आपके चरणों में कितनी ही आत्माएँ समर्पित होती जाती हैं, पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप सबके बीच निर्लिप्त और शान्त रहे आते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य जैसे श्रेष्ठ रत्नों को अपनी अनंत आत्म-गहराई में छिपाए हुए आप सचमुच रत्नाकर हैं। दिन में एक बार सद्गृहस्थ के द्वारा हाथ की अंजली में दिया गया शुद्ध सात्त्विक आहार ग्रहण करना, लकड़ी के आसन पर अल्प निद्रा लेना, केशलुंचन करना, बालकवत् निर्विकार भाव से विचरण करना और शरीर के शृंगार,स्नान आदि से विरक्त रहना-यह आपके साधु जीवन की कठोर तपश्चर्या है। इतनी कठोर तपश्चर्या के बावजूद आप अत्यन्त सरल, सहज और संवदेनशील हैं। आपके आत्मानुशासित जीवन में अद्‌भुत लयात्मकता सहज ही दिखाई देती है।

आपकी नग्नता भीतर-बाहर एक-सा उज्ज्वल, निर्मल और पारदर्शी होने का संदेश देती है। साथ ही अपरिग्रह और अनासक्ति का या अल्पतम लेकर अधिकतम लौटाने का पाठ सिखाती है।

आप भक्ति, ज्ञान और आचरण की पावन त्रिवेणी हैं। आपका चरण-सान्निध्य पाकर हम सहज ही अपने पापों का प्रक्षालन करके निर्मल आत्मा की अनुभूति कर सकते हैं। आपकी मधुर, मुस्कान और मृदुता मन को मुग्ध ही नहीं करती, बल्कि संसार से मुक्त भी करती है। आत्म-साधना में लीन रहकर भी आप अपनी हित-मित और प्रिय वाणी से लोक-कल्याण में तत्पर रहते हैं।

अनेक प्राचीन तीर्थस्थल आपका स्पर्श पाकर जीवन्त हो उठे हैं और आगामी पीढ़ी के लिए कुछ नए श्रद्धास्थल भी आपके शुभाशीष से आकार ले रहे हैं। समाज आपसे सही दिशा पाता है और युवा-शक्ति आपके श्रीचरणों में नतशीर्ष होकर सदाचार का पाठ सीखती है। संस्कारवान युवा देश की प्रशासनिक सेवाओं में योगदान दे सकें, इसलिए उनके योग्य प्रशिक्षण केन्द्र का संचालन आपके आशीर्वाद से सफलतापूर्वक किया जा रहा है। पशु-पक्षियों को जीवनदान देने वाली अनेक गोशालाएँआपकी चरण-रज पाकर पवित्र हो गई हैं। सर्वमैत्री और करुणा का संदेश देने वाला भाग्योदय तीर्थ आपकी असीम कृपा का सुफल है। कबीर ने ठीक ही लिखा है कि -

तन का जोगी सब करै,
मन का बिरला कोय।
सब सिधि सहजै पाइए,
जो मन जोगी होय।

वचनामृत

जैसे माँ अपने बच्चे को बड़े प्रेम से दूध पिलाती है, वैसी ही मनोदशा होती है बहुश्रुतवान गुरु महाराज की। अपने पास आने वालों को वे बताते हैं संसार की प्रक्रिया से दूर रहने का ढंग और उनका प्रभाव भी पड़ता है, क्योंकि वे स्वयं उस प्रक्रिया की साक्षात् प्रतिमूर्ति होते हैं।

गुरु स्वयं भी तरते हैं और दूसरों को भी तारते हैं। वे नौका के समान हैं, जो स्वयं नदी के उस पार जाती है और अपने साथ अन्यों को भी पार लगाती है।

बालक अपनी माँ के पास बैठकर अपने हृदय की हर बात बड़ी सरलता से कह देता है और प्रसन्न होता है। इसी प्रकार, सरल हृदय वाला साधक जब यथावत होकर सभी ग्रंथियाँ खोल देता है और सीधा-सादा अपने मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर देता है, तब उसके जीवन में सहज आनन्द की प्राप्ति होने लगती है।

जिसका मन संसार के प्रति वैराग्य और प्राणी मात्र के प्रति मृदुता से भरा है, वह इस संसार से सहज ही पार हो जाता है।

निराकुलता जितनी-जितनी जीवन में आये, आकुलता जितनी-जितनी घटती जाये, उतना-उतना मोक्ष आज भी संभव है।

संयम वह है जिसके द्वारा जीवन स्वतंत्र और स्वावलंबी हो जाता है। प्रारम्भ में तो संयम बंधन जैसा लगता है, लेकिन बाद में वही जब हमें निर्बंध बना देता है, हमारे विकास में सहायक बनता है तब ज्ञात होता है कि यह बंधन तो निर्बंध होने का बंधन था।

दुनिया के सारे संबंधों के बीच भी मैं अकेला हूँ - यही भाव बनाये रखना सुखी रहने का एकमात्र उपाय है। वास्तव में, सुख अन्यत्र कहीं नहीं है, सुख तो अपने ही भीतर एकाकी होने में है। सभी के प्रति राग-द्वेषरूप विकारी भावों से मुक्त अपने वीतराग स्वरूप का चिन्तन करना धर्म की वास्तविक उपलब्धि है।

आज का युग भाषा-विज्ञान में उलझ रहा है और भीतर के तत्त्व को पकड़ ही नहीं पा रहा है। जो ज्ञान, साधना के माध्यम से जीवन में आता है, वह भाषा के माध्यम से कैसे आ सकता है? पाँच इन्द्रियों के विषयों से मन को हटाकर अपने आत्म-ध्यान में लगाना ही ज्ञानीपने का लक्षण है।

ज्ञान का प्रवाह तो नदी के प्रवाह की तरह है,उसे किसी भी दिशा में बहाया जा सकता है। हमारा कर्त्तव्य है कि उसे स्व-पर-हित के लिए उपयोग में लायें, उसे सही दिशा दें। ज्ञान का दुरुपयोग होना विनाश है और ज्ञान का सदुपयोग करना ही विकास है।

प्रत्येक व्यक्ति आकश की ऊँचाइयाँ छूना चाहता है, लेकिन अपने ऊपर लादे हुए अपवित्र / अनावश्यक बोझ को नहीं हटाता, जो उसे ऊपर उठने में बाधक साबित हो रहा है। पवित्रता तो लोभ के परित्याग से ही संभव है।

आज देश के सामने सबसे बड़ा संकट, सबसे बड़ी समस्या मात्र भूख-प्यास की नहीं है, बल्कि समस्या तो विचारों के परिमार्जन की है। सभी के प्रति सद्भाव ही इस समस्या का अंतिम समाधान है। लोकतंत्र की नींव देश के प्रति गौरव, बहुमान एवं परस्पर अपनत्व की भावना के द्वारा ही सुरक्षित रहेगी।

'पर' कल्याण में भी 'स्व' कल्याण निहित है। किसान की यही भावना रहती है कि वृष्टि समय पर हुआ करे और जब भी होती है सभी के खेतों पर होती है किन्तु जब किसान फसल काटता है तो अपनी ही काटता है किसी दूसरे की नहीं।

❑

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नत्रय के प्रकाशपुञ्ज

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत

अध्यात्म भावना के भावयिता आत्मचिन्तक, संयम साधना सतत संलीन आचार्यश्री विद्यासागर महाराज सौम्य गुण ग्राहक, शुचिता, सत्यता; संयत, सुललित व्यक्तित्व सम्पन्न श्रमणसंस्कृति उन्नायक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। भव्य और दिव्य व्यक्तित्व के धारक रत्नत्रय के मूर्तिमान स्वरूप हैं। रत्नत्रय में प्रथम स्थान सम्यग्दर्शन का है। आचार्य श्री में सम्यक्त्व के बाह्य लक्षण स्फुट रूप से परिलक्षित होते हैं। व्यवहार सम्यक्त्व के साथ निश्चय सम्यक्त्व के अधिकारी इसलिए प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनका ज्ञान और चारित्र सम्यक् है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि बिना सम्यग्दर्शन के नहीं होती है जैसा कि जिन शासन की महती प्रभावना करने वाले आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी ने कहा है-

विद्या वृत्तस्य संभूति स्थितिवृद्धि फलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ 32॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो सकती उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति नहीं होती है।

आचार्य श्री आगम और सिद्धान्त के गहन अभ्यासी हैं। उन्हें पूर्ण अवबोध है कि मोक्षमार्ग में ज्ञान और चारित्र का महत्त्व कम नहीं है, इसीलिए उन्होंने पूर्ण श्रद्धापूर्वक ज्ञान और चारित्र को विकसित किया है। यही अमृतचन्द्र सूरि का कहना है-

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञानं चारित्रञ्च ॥ पुरुषार्थ0

रत्नत्रयरूपी मोक्षमार्ग में सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्नपूर्वक आश्रय लेना चाहिए क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान और चारित्र सम्यक् बनते हैं। तीनों के सम्यक् होने पर मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

समयक्त्वनिधि से विभूषित आचार्य श्री विद्यासागर जी का विपुल साहित्य और सहस्रों मनीषियों की ज्ञान-पिपासा को शान्त करने वाले उनके प्रवचन ज्ञान गुण की विशिष्टता के परिचायक हैं। लेखन, प्रवचन शब्दाडम्बर नहीं है अपितु अर्थवहन की क्षमता वाला है, मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने वाला है और यही कारण है कि लाखों धर्मश्रद्धालु आपके बताये मार्ग पर चलकर अपने आपको धन्य समझ रहे हैं। जिसके धर्मोपदेश से सहस्रों प्राणी मोक्षमार्ग पर बढ़ जाएँ उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही होता है। चतुर्थकाल में तीर्थंकरों के उपदेशों से कोटि-कोटि मानव मोक्षमार्गी बनकर आत्मकल्याण कर सके। वर्तमान में आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के उपदेश और संस्कार से सहस्रों, श्रद्धालु मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होकर आत्म कल्याण कर रहे हैं, यह सब सम्यग्ज्ञान का ही महात्म्य है।

आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि ने तो मोक्ष के हेतुओं में ज्ञान को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। वे समयसार की गाथा 153की टीका में लिखते है-"ज्ञान के अभाव में अज्ञानियों में अन्तरंग व्रत, नियम, सदाचरण, तप आदि होते हुए भी मोक्ष नहीं है, क्योंकि अज्ञान ही बन्ध का हेतु है" इस कथन से स्पष्ट है कि ज्ञानी की क्रियाएँ ही सार्थक हैं, ज्ञानपूर्वक चारित्र का पालन साध्य की सिद्धि कराने वाला है।

आचार्यश्री का अध्ययन का व्यापक है, उनका अध्ययन जैनधर्म-दर्शन, आगम-सिद्धान्त और साहित्य के घेरे में ही आबद्ध नहीं है उन्होंने समग्र भारतीय दर्शनों और भारतीय धर्मों के ग्रन्थों को अपने अध्ययन का विषय बनाया है, उनका गम्भीर चिन्तन है। गहराई से सोचा-समझा है, जिसका परिणाम उनके संस्कृत और हिन्दी काव्य साहित्य में स्पष्ट दिखलायी पड़ता है। उनके द्वारा लिखित संस्कृत शतकसाहित्य और मूकमाटी सहित अन्य काव्यग्रन्थों का अनुशीलन-परिशील करने तथा उनके प्रवचनों को सुनने पर उनकी विशाल दृष्टि, उनके विराट व्यक्तित्व, गम्भीर चिन्तन और धर्मात्माओं के प्रति समभाव के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इतना ज्ञान होने पर भी उन्हें अहंकार और अहंभाव छू तक नहीं गया है। हाँ रूढ़िवादिता से हटकर उनके चिन्तन को कुछ लोग स्वीकार नहीं कर पाते हैं या शास्त्रों के मर्म को न समझने के कारण भी उन्हें वह अस्वीकार्य होता है, इसलिए कोई कभी दबी जुबान से आचार्यश्री के विरोध में भी स्वर निकालता है, किन्तु जब वास्तविकता का बोध हो जाता है, तो वही आचार्यश्री के द्वारा प्रस्तुत चिन्तन का जोरदारी से स्वागत करता है।

आचार्य श्री वर्तमान साधकों में सर्वाधिक ज्ञानवान हैं। जहाँ उनके ज्ञान का परिणाम विविध विधाओं के विविध ग्रन्थ हैं जिन पर अनेक छात्र-छात्राएँ शोध कर पी-एच.डी. उपाधि ग्रहण कर चुके हैं, वहीं "णाणस्स फलं पच्चक्खाणं" अर्थात् ज्ञान का फल त्याग (चारित्र) है। आचार्यश्री इसके सच्चे अधिकारी हैं। उनका जीवन ज्ञान और चारित्र की समन्वित साधना का स्वरूप है। श्रमण संस्कृति में उसी ज्ञान को महत्त्व दिया जाता है जो आचरण में मूर्त रूप लेता है। जो ज्ञान आचार में नहीं उतरता केवल तत्त्वचर्चा एवं वाद-विवाद या उपदेश तक ही सीमित रहता है, वह केवल बोझ रूप है। उससे साध्य की सिद्धि नहीं होती है। साध्य की सिद्धि या साधुत्व की सफलता के लिए ज्ञान के साथ चारित्र का होना अनिवार्य है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि आचार्यश्री के जीवन में ज्ञान की दिव्य ज्योति के साथ सम्यक्चारित्र के उज्ज्वल-समुज्ज्वल स्वरूप का दर्शन होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा कथित निम्न गाथा को हृदयङ्गम कर तदनुरूप जीवन पथ को बढ़ा रहे हैं-

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥7॥

प्रवचनसार

चारित्र वास्तव में धर्म है और जो धर्म है, वह साम्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव द्वारा कहा गया है। साम्य ही यथार्थत: मोह और क्षोभरहित आत्मा का परिणाम है।

चारित्र की प्राप्ति ही मानव-जीवन की सार्थकता है। इसके द्वारा ही कषायों का उपशमन किया जा सकता है। इस चिन्तन ने ही आचार्य श्री को पञ्चाचार के सम्यक् परिपालन की प्रशस्त प्रेरणा प्रदान की है। चारित्र की महिमा प्राय: सभी आरातीय आचार्यों ने गायी है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने भी महत्ता बतलायी है-

चारित्रं भवति यत: समस्त सावद्ययोगपरिहरणात्।
सकलकषायविमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत्॥

कारण यह है कि समस्त पाप युक्त योगों के दूर करने से चारित्र होता है, वह चारित्र समस्त कषायों से रहित होता है, निर्मल होता है, राग-द्वेष रहित वीतराग होता है, वह चारित्र आत्मा का परिणाम है।

आत्म परिणाम रूप चारित्र के अधिकारी आप जैसे विरले सन्त ही हैं क्योंकि-

शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहिं सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ॥

प्रत्येक पर्वत में माणिक्य नहीं होता। प्रत्येक हाथी के मस्तक में मुक्ता नहीं है। प्रत्येक वन में चन्दन नहीं है, उसी प्रकार सर्वत्र साधु नहीं मिलते।

साधु से तात्पर्य साधुता से है। आज साधुओं की अधिकता है, किन्तु आचार्यश्री-जैसी साधुता विरले पुरुषों में ही पायी जाती है। आप सच्चे साधक हैं। निरन्तर ज्ञान,ध्यान, तप में लवलीन रहने वाले परम तपस्वी हैं। रत्नत्रय के मूर्तिमान स्वरूप आपके जितने भी गुण वर्णित किए जाएँ वे सब थोड़े होंगे। इनके किञ्चित् गुणों का कथन आत्मतोष के लिए हो सकता है, क्योंकि गुणनिधि के गुणों को प्रकट करना असंभव ही है।

वे सद्गुणों के भण्डार हैं। प्रशान्त, गम्भीर, उदारचेता, सिद्धसारस्वत, हितमित प्रियभाषी, पर हित निरत, स्याद्वादविद्या के अधिपति आचार्य समन्तभद्र, भट्टाकलंक देव, जिनसेन, विद्यानन्दि आदि आचार्यों सदृश जैन शासन के अनुपम द्योतक, प्रभावक और प्रसारक आचार्यश्री विद्यासागज महाराज सम्प्रति अर्द्ध शत मुनि दीक्षाएँ और सार्धशत अर्यिका दीक्षाएँ प्रदान कर लोक में दिगम्बरत्व का जो जयघोष किया है, उसका वर्णन करने के लिए शब्द सामर्थ्य हीन हैं ।

आचार्यश्री में ऐसी विलक्षणता एवं अद्भुद्ता है जो दर्शकों को सहज ही आकर्षित कर लेती है। वे इनके श्रीचरणों में रहकर अपने जीवन को व्यतीत करना चाहते हैं। इसी आकर्षणशक्ति के फलस्वरूप सैकड़ों युवा-युवतियाँ आपके चरणों में बैठकर ज्ञान की आराधना कर रहे हैं और स्व-पर कल्याणकारी दैगम्बरी दीक्षा अंगीकार कर जिनधर्म की महिमा बढ़ा रहे हैं।

विचारों में दृढ़ता, अन्त:करण में भव्य करुणा, चिन्तनपूर्ण धार्मिक जीवन, आत्मसाधना, शास्त्रानुकूल चर्या आचार्यश्री का समग्र व्यक्तित्व है और युगों-युगों तक तत्त्वों का बोध कराने वाला संयम-साधनों का सत्शिक्षण देने वाला, आगम अध्यात्म व्याकरण-साहित्य, धर्म-दर्शन का निरूपक समग्र कृतित्व है।

अनुपमेय व्यक्तित्व और कृतित्व वाले आचार्यश्री विद्यासागर जी पुरातन श्रमण परम्परा के उन्नायक, पञ्चाचारपरिपालक, षट्त्रिंशद्गुणमण्डित परम वीतरागी सन्त हैं। वाल्मीकि के शब्दों में-

"न पर: पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्र भूषणा: ॥"

आचार्यश्री सच्चे सन्त हैं।

सन्त स्वयं सन्मार्ग पर चलते हुए दूसरों को सन्मार्ग पर लेकर चलते हैं। आचार्यश्री ने वर्तमान में पनप रही विकृतियों को रोककर जिनेन्द्र महाप्रभु के मार्ग को स्वयं अपनाया है और संसार सागर में निमग्नजनों को उससे निकालकर प्रशस्त मोक्षमार्ग पर बढ़ाया है, बढ़ा रहे हैं। यह जगत् आचार्यश्री के उपकार से सतत उपकृत रहेगा, वे इसी प्रकार युग-युग तक जिनधर्म के निमित्त बने रहें।

24/32, गाँधी रोड,
बड़ौत-250611 उ.प्र.

विद्याधर से विद्यासागर बन गए

राजचन्द्र जैन 'राजेश'

वे उपमेय की उपमाओं से उपमातीत बन गए।
वे जैनधर्म की आन, बान और शान बन गए।
वे स्वयं दया और करुणा की मिसाल बन गए।
वे विद्याधर थे, विद्याधर से विद्यासागर बन गए।

दि. जैन मन्दिर टी.टी. नगर, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य जगत के ज्योतिर्मय नक्षत्र : आचार्य विद्यासागर

डॉ. के.एल. जैन

'साहित्य' शब्द की हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी के विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है। विद्वानों का तत्सम्बन्ध में यही मत रहा है कि 'साहित्य' वह है जो सभी का 'हित-साधन' करे, जिसमें जन कल्याण की भावना हो तथा जिसके द्वारा जीवन की व्याख्या इस तरह से की जाय जिसमें मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं और आत्माभिव्यक्ति को पूरा-पूरा स्थान मिल सके। आचार्य विद्यासागर जी साहित्य का सम्बन्ध 'सामाजिक-सुख' और उसके 'हित-चिन्तन' से मानते हैं। अर्थात् साहित्य में सम्पूर्ण समाज के 'हित-चिन्तन' का भाव समाहित होना चाहिए तभी वह सच्चा साहित्य कहलाने का हकदार होता है।

आचार्यश्री ने विपुल साहित्य का सृजन किया है। इस साहित्य में सृष्टि का सार समाया हुआ है। उनकी कृतियाँ 'ज्ञान राशि के संचित कोश' हैं जिनमें जनकल्याण और लोक कल्याण की भावना समाहित है। इस दृष्टि से उनके 'प्रवचन' काफी महत्त्वपूर्ण एवं सारग्राही हैं। वैसे 'प्रवचन' एक कला है, परन्तु उस कला में पारंगत हो पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसके लिए पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ शास्त्रीय बोध और लौकिक ज्ञान की भी आवश्यकता होती है, तभी एक श्रेष्ठ 'प्रवचनकार' अपनी वाणी के माध्यम से इस संसार में भटक रहे मानवों को ज्ञानामृत पिलाकर उनका पथ प्रशस्त सकता है। चूँकि आचार्य विद्यासागर को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी और बंगला भाषा का पर्याप्त ज्ञान है, इसलिये उनके 'प्रवचन' ज्ञानराशि के खजाने हैं जिनमें सृष्टि का सारतत्त्व समाया हुआ है।

आचार्य विद्यासागर इस धरित्री पर एक प्रकार के जंगमतीर्थ हैं, जो इस भौतिक जगत् को सन्तापों से मुक्त कराने में लगे हुए हैं। फिर एक सच्चा 'सन्त' तो अपने ज्ञान और साधना के द्वारा ऐसा 'अलख' जगाता है कि संसार में भटक रहे लोगों को दिशा मिल जाती है। आचार्य विद्यासागर ने अपने प्रवचनों के द्वारा 'जिनवाणी' के प्रसाद को सम्पूर्ण उत्तर भारत में जिस उदारता से बाँटा है उसके लिए सदियाँ भी उनके इस उपकार को विस्मृत नहीं कर पाएँगीं। क्योंकि इन प्रवचनों में सृष्टि का सार, जीवन का सौन्दर्य, मानवता का मर्म, मनुष्यत्व की गरिमा, संस्कृति का स्वरूप मर्यादाओं की थाती, मुक्ति की प्रेरणा, तप और संयम का उत्कर्ष तथा जागरण का सन्देश/शंखनाद सुनाई देता है।

विद्वानों का ऐसा मानना है कि कविता मन की असल गहराइयों से उठती हुई अनुभूतियों की तरंग है। ये ही तरंगें जब शब्दों के माध्यम से व्यक्त होकर जन-जन के हृदय को अनुरंजित करती हुई अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति कराती हैं तो कविता धन्य हो जाती है। और ऐसा ही कार्य किया है कवि की 'मूकमाटी' ने। फिर 'मूकमाटी' केवल एक काव्यकृति नहीं, वरन् एक ऐसी रचना है जिसमें भक्ति, ज्ञान और काव्य की त्रिवेणी का संगम सबको पावन बना देता है। 'मूकमाटी' महाकाव्य 'जैनदर्शन' के धरातल पर समकालीन परिप्रेक्ष्य में काव्य-शास्त्र की एक नवीन भावभूमि प्रस्तुत करने के साथ-साथ सांस्कृतिक विकास के स्वरूप को दर्पण की भाँति रेखांकित करता है। महत्त्वूपर्ण बात यह है कि इस कृति ने जीवन में हताशा, पराजय और कुण्ठा के स्थान पर जिस आशा, पुरुषार्थ और स्थाई मूल्यों का संचार किया है वह अपने आप में अन्यतम है। कुल मिलाकर देखा जाय तो यही कहना पर्याप्त होगा कि 'मूकमाटी' एक ऐसी काव्यकृति है जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि का सार तत्त्व समाया हुआ है जिसे कोई भी साहित्यकार किसी एक रचना में संयोजित करने का दुर्लभ प्रयास न तो आज तक कर सका है और भविष्य में भी कर सकेगा, यह कहना भी कठिन है।

ऐसा माना गया है कि जब एक 'सन्त' कविता के रूप में अपनी आत्मानुभूति को प्रकट करता है तब उसकी वाणी के सारतत्त्व को हृदयंगम करने में अधिक सरलता होती है। आचार्य विद्यासागर ने आगम की भूल-भुलइयों तथा काव्य की दुरूहता से आज के श्रावक और पाठक को बाहर निकालने का जो मंगल कार्य किया है वह निश्चित रूप से समकालीन कविता की दृष्टि से एक अनूठा प्रयोग माना जाएगा और साहित्य जगत में इसके लिए आपके प्रति चिर ऋणी रहेगा।

काव्य का सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। जिस प्रकार धर्म का उद्देश्य जन-जन का हित करना है, ठीक वैसे ही उत्तम साहित्य भी 'हितेन साहितम्' होता है। अर्थात् उत्तम साहित्य वह है जो मानव को हित की ओर उन्मुख करे। उसके जीवन का परिमार्जन करे। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाय। मृत्यु से मुक्त कर दे। यदि सही मायने में देखा जाए तो साहित्य का यही स्वरूप 'धर्म-साधना' से भी निखरता है। 'धर्म' हमें बाह्य प्रदूषण से मुक्त कर आत्मा के पवित्र पर्यावरण में ले जाता है। इस व्याख्या से यह बात स्वयमेव ही स्पष्ट हो जाती है कि 'धर्म' और 'साहित्य' का परस्पर एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। तत्सम्बन्ध में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि आचार्य विद्यासागर का धर्म-चिन्तन ही उनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य-चेतना बन गई है, जिसके द्वारा उन्होंने सांसारिक प्राणियों को आत्मकाव्यरस की संजीवनी पिलाकर जीवन दान दिया है।

आचार्यश्री ने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सुन्दर भाषा और श्रेष्ठ शब्दावली का चयन किया है। लेकिन छन्दों के बन्धन को स्वीकारना इसलिए उचित नहीं माना कि मुक्ति की चाह रखने वाला निर्बन्ध 'सन्त' किसी बन्धन को (जीवन और काव्य में) कैसे स्वीकार सकता है। इसलिए उन्होंने मुक्त-छन्द को भी अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया, पर उसमें भी जो एक गति और लय का भाव है वह पाठक को आन्दोलित करने के साथ-साथ रससिक्त भी कर देता है।

डॉ. बारेलाल जैन द्वारा लिखित **हिन्दी साहित्य की सन्त काव्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन**' पुस्तक की रचनात्मक क्षमता पठनीय और ग्रहणीय है। यह कृति 'सन्त-साहित्य' के अध्येताओं को एक नूतन दृष्टि प्रदान करने के साथ-साथ समय के महत्त्व को समझने के लिए भी चेतना प्रदान करेगी।

सामाजिक परिष्कार के लिए इस प्रकार की पुस्तकों का औचित्य असन्दिग्ध है। पुस्तक की भाषा सहज और सरल होने के कारण पाठक को पहेलियों में भटकने की अड़चन प्रतीत नहीं होगी। मुझे लगता है कि इस पुस्तक के प्रकाशन से आचार्य विद्यासागर की उदात्त जीवन-प्रणाली, धार्मिक औदार्य और रचनात्मक उत्कर्ष का जो सन्देश साहित्य जगत् तक पहुँचेगा, वह निश्चित रूप से अन्यतम होगा।

मेरो विनम्र अनुरोध है कि सुधी और विज्ञजन इस महनीय ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें, उन्हें अनूठा लाभ होगा। क्योंकि समकालीन समय के आचार्य विद्यासागर एक ऐसे 'सन्त हैं:

"श्रद्धानत हो अक्षय कीर्ति करती जिन्हें प्रणाम।
अधर-अधर पर कौन लिख गया विद्यासागर नाम॥"

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष- हिन्दी विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

1. हिन्दी-साहित्य की सन्त काव्य-परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन

लेखक - डॉ. बारेलाल जैन, शोध सहायक-महाकवि केशव अध्यापन-अध्यापन विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, मध्यप्रदेश।

प्रकाशक- निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति, 4, कलाकार स्ट्रीट, कोलकाता- 700007 (पं. बंगाल) प्रथमावृत्ति, पृ. 20+254, मूल्य 45 रुपए।

आदिपुराण के सुभाषित

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं॥

भावार्थ- इस लोक में विद्यावान पुरुष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है।

विद्या यशस्करी पुसां विद्या श्रेयस्करी मता।
सम्यगाराधिता विद्या देवता कामदायिनी॥

भावार्थ - विद्या ही मनुष्य का यश करने वाली है, विद्या ही मनुष्यों का कल्याण करने वाली है। अच्छी तरह से आराधना की गई विद्या देवता ही सब मनोरथों को पूर्ण करती है।

विद्या कामदुहा धेनुर्विद्या चिन्तामणिर्नृणाम्।
त्रिवर्गफलितां सूते विद्या संपत् परम्पराम्॥

भावार्थ - विद्या मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, विद्या ही चिन्तामणि है, विद्या ही धर्म, अर्थ तथा काम रूप फल से सहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न करती है।

विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्या कल्याणकारकम्।
सहयायि धनं विद्या विद्या सर्वार्थसाधनी॥

भावार्थ - विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सर्व प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।

पुण्यात् सुखं न सुखमस्ति विनेह पुण्याद्।
बीजाद्विना न हि भवेयुरिह प्ररोहाः॥

भावार्थ - इस संसार में पुण्य से ही सुख प्राप्त होता है। जिस प्रकार बीज के बिना अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार पुण्य के बिना सुख नहीं होता।

प्रस्तुति
पं. सनतकुमार विनोद कुमार जैन
रजवाँस (सागर) म.प्र. -470422

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यश्री विद्यासागर जी के साहित्य पर हुए एवं हो रहे शोध कार्य

डॉ. शीतलचन्द्र जैन

दिगम्बर जैन समाज के ज्योतिर्मय नक्षत्र एवं जैन श्रमण-संस्कृति के उन्नायक, बाल ब्रह्मचारी 214 साधकों के दीक्षा-प्रदाता सन्तशिरोमणि आचार्यप्रवर श्री विद्यासागर जी महाराज ने सन् 1968 में जो कलम थामी, उससे अद्यतन 'मूकमाटी' महाकाव्य, 6 संस्कृत शतकम्, 1 चम्पूकाव्य,राष्ट्रभाषा में 10 शतक, 3 काव्य संग्रह, प्राकृत-अप्रभंश-संस्कृत में लिखित पूर्वाचार्यों के 24 ग्रन्थों का श्रुतिमधुर काव्यानुवाद एवं लगभग 40 प्रवचन संग्रह सर्जित होकर जिनवाणी के अक्षय भण्डार के निधि बन चुके हैं। आपके द्वारा लिखित इस विपुल वाङ्मय पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों पर अभी तक जो शोध कार्य हुए या हो रहे हैं, उनका विवरण निम्नानुसार है:

1. डॉ. (श्रीमती) आशालता मलैया (प्राध्यापिका-संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय, सागर, आवास-32 एल.आई.जी. पद्माकर नगर, मकरोनिया, सागर-470004, मध्यप्रदेश, 07582-30093) के द्वारा डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अन्तर्गत "संस्कृत शतक परम्परा एवं आचार्य विद्यासागर के शतक" विषय पर शोध प्रबन्ध लिखकर सन् 1984 में पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की गई। यह शोध प्रबन्ध स्व. श्री बाबूलाल जैन, जयश्री आइल मिल्स, गवलीपारा, दुर्ग (छत्तीसगढ़) द्वारा 1989 में प्रकाशित हुआ है।

2. श्रीमती कल्पना जैन (द्वारा-अरविन्द कुमार जैन, एन.सी.पी.एच. कॉलरी,पो. हल्दीवाड़ी, चिरमिरी छत्तीसगढ़ के द्वारा डॉ. के.एल.जैन (हिन्दी विभागाध्यक्ष-शासकीय स्नातकोत्तर विद्यालय, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश) के निर्देशन में अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय,रीवा, म.प्र. के अन्तर्गत "मूकमाटी महाकाव्य: एक अनुशीलन" नामक लघु शोध प्रबन्ध लिखा गया।

3. डॉ. बारेलाल जैन (रिसर्च एसोसिएट-महाकवि केशव अध्यापन एवं अनुसन्धान केन्द्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यलाय, रीवा, आवास- दिगम्बर जैन मन्दिर परिसर, कटरा,रीवा) ने डॉ. के.एल. जैन (आवास-नूतन विहार कॉलोनी, ढोंगा, टीकमगढ़-472001, मध्यप्रदेश-07683-42290, 40907) के निर्देशन में पी-एच.डी. उपाधि "हिन्दी साहित्य की सन्त काव्य परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचार्य विद्यासागर के कृतित्व का अनुशीलन" नामक शोध प्रबन्ध लिखकर प्राप्त की। यह शोधप्रबन्ध निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति,पी-4, कलाकार स्ट्रीट, कोलकाता-700007, पश्चिम बंगाल से प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थ प्राप्ति हेतु (033)239-887, 2389-3182, 239-8794 (239-8241, फैक्स 238-3833 पर सम्पर्क किया जा सकता है।

4. डॉ. चन्द्रकुमार जैन (सहा. प्राध्यापक-हिन्दी विभाग, शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय, राजनांदगाँव-491441 छत्तीसगढ़), आवास-22/227, किला पारा, राजनांदगाँव, 07744-25647 के द्वारा डॉ. गणेश खरे (प्राचार्य-शासकीय महाविद्यालय, धुमका (राजनांदगाँव) छत्तीसगढ़) के कुशल निर्देशन में "आचार्य श्री विद्यासागर कृत 'मूकमाटी' का सांस्कृतिक अनुशीलन" विषय पर पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध आलेखित कर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की।

5. रमेश चन्द्र मिश्र (प्राध्यापक-हिन्दी विभाग, वासवानी डिग्री कॉलेज, बैरागढ़, भोपाल, म.प्र.) ने बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल के अन्तर्गत डॉ. वृषभ प्रसाद जैन (रीडर-प्राकृत, तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, सम्प्रति-हिन्दी व्याकरण इकाई-महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय (महा.) आवास ए-1/12, सेक्टर-एच, अलीगंज, लखनऊ-226 024, उ.प्र. 0522-322263 (नि.), 323671 (कार्या.)) के निर्देशन में "मूकमाटी महाकाव्य के प्रतीकों का वैज्ञानिक विश्लेषण" विषय पर सन् 1990 में एम.फिल. हेतु लघु शोध प्रबन्ध लिखा। यह प्रबंध शक्ति प्रकाशन, 58 सुल्तानिया रोड, भोपाल म.प्र. से प्रकाशित है।

6. श्रीमती किरण जैन (द्वारा-डॉ. जे.के. जैन, वरिष्ठ प्रवक्ता-वाणिज्य विभाग, 13-टीचर्स हॉस्पिटल, विश्वविद्यालय, सागर) के द्वारा लिखित डॉ. सुरेश आचार्य (रीडर एवं अध्यक्ष-हिन्दी विभाग-डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.) के निर्देशन में "जैन-दर्शन के सन्दर्भ में मुनि विद्यासागर जी के साहित्य का अनुशीलन" नाम से सन् 1992 में पी-एच.डी. का शोध प्रबन्ध स्वीकृत हुआ।

7. मेहेर प्रसाद यादव, एल.डी.आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद गुजरात के द्वारा डॉ. शेखरचन्द्र जैन (पूर्व प्राचार्य एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष-श्रीमती सद्गुणा सी.यू.आर्ट्स गर्ल्स कॉलेज, अहमदाबाद, आवास-25, शिरोमणी बंगलोज, बड़ोदरा एक्सप्रेस हाइवे के सामने, सी.टी.एम. चार रास्ता के पास, हाइवे, अहमदाबाद-380 026, गुजरात, 079-5892744, 589177) के निर्देशन में गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद के अन्तर्गत "आचार्य कवि विद्यासागर जी के प्रबन्ध 'मूकमाटी' का समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर लघु शोध प्रबन्ध सन् 1992 में लिखा गया।

8. नरेश चन्द्र गोयल के द्वारा (स्व.) डॉ. नरेन्द्र भानावत (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष-राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के मार्गदर्शन में सन् 1991 में "आचार्य विद्यासागर जी कृत 'मूकमाटी: एक अध्ययन' " नामक लघु शोध प्रबन्ध आलेखित किया गया।

9. सुश्री सीमा जैन (सुपुत्री हरप्रसाद जैन, जैन मुहल्ला, बगलबाडा रोड, बरेली (रायसेन) के द्वारा डॉ. जे.पी. नेमा (हिन्दी विभागाध्यक्ष, शासकीय महाविद्यालय, बरेली (रायसेन) म.प्र.) के निर्देशन में सन् 1992 में बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल के अन्तर्गत "आचार्य श्री विद्यासागर जी कृत 'मूकमाटी' महाकाव्य: एक साहित्यिक मूल्यांकन" पर लघु शोध प्रबंध लिखा गया है।

10. नरेन्द्र सिंह राजपूत (अध्यापक-शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पटेरा (दमोह, म.प्र.) के द्वारा लिखित डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अन्तर्गत डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' (पूर्व प्राध्यापक-संस्कृत विभाग, शासकीय महाविद्यालय, दमोह आवास-28, सरोज सदन, सरस्वती कालोनी, दमोह, 470661, म.प्र. कुशल मार्गदर्शन में "संस्कृत काव्य क विकास में" बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान" विषय पर सन् 1992 में पी-एच.डी. का शोध प्रबन्ध स्वीकृत किया गया। इसमें आचार्य विद्यासागर जी द्वारा लिखित 5 संस्कृत शतकों पर शोधात्मक परिशीलन देखने को मिलता है। यह शोध प्रबन्ध आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र सेठजी की नसिया, ब्यावर- 305901 अजमेर राज.) एवं भगवान् ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर-303 902 (जयपुर) राजस्थान से संयुक्त रूप में प्रकाशित है।

11. डॉ. विमलकुमार जैन (पूर्व हिन्दी विभागध्यक्ष-डॉ. जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, आवास-29/23-शक्तिनगर, दिल्ली 110007) के द्वारा सन् 1993 में डी.लिट्. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध 676 पृष्ठों में लिखा गया। ज्ञानोदय संस्थान जैन बाग, वीर नगर, सहारनपुर-247001, उ.प्र. से यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। जो "महामनीषी आचार्य श्री विद्यासागर: जीवन एवं साहित्यिक अवदान" शीर्षक से मुद्रित है।

12. डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' (प्राध्यापक-हिन्दी विभाग, सेवा सदन महाविद्यालय, बुरहानपुर आवास-एल. 65, न्यू इंदिरा नगर-ए, अहिंसा मार्ग, बुरहानपुर- 450 331 (खण्डवा) मध्यप्रदेश 07325-57662) के द्वारा डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के तत्कालीन हिन्दी विभागध्यक्ष डॉ. बलभद्र तिवारी के निर्देशन में 'स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी जैन साहित्य और आचार्य विद्यासागर के समग्र साहित्य का अनुशीलन" विषय पर डी.लिट्. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध लिखा जा रहा था।

13. डॉ. श्रीमती सुशीला सालगिया (प्राचार्य-क्लाथ मार्केट कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, गणेश गंज, इंदौर, आवास-10-साउथ राज मोहल्ला, इन्दौर) के द्वारा अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, म.प्र. के अन्तर्गत डॉ. परमेश्वर दत्त शर्मा एवं डॉ. दिलीप चौहान (प्राध्यापक-हिन्दी विभाग, बी.एस.शासकीय महाविद्यालय, देपालपुर (इन्दौर) म.प्र. के मार्गदर्शन में "जैन विषयवस्तु से सम्बद्ध आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में सामाजिक चेतना" विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इस प्रबंध में आचार्य विद्यासागर के 'मूकमाटी' महाकाव्य पर विस्तृत शोधात्मक विचार-विमर्श किया गया है।

14. श्रीमती सारिका जैन ने (द्वारा राकेश सिंघई 'पत्रकार' 66-67 पंचशील नगर, सेकेण्ड बस स्टॉप, भोपाल, म.प्र. के द्वारा डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अन्तर्गत सन. 1993 में डॉ. एच.एम.बैस (प्राचार्य विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय, सागर) के निर्देशन में लघु शोध प्रबन्ध एम.एड. हेतु "आचार्य श्री विद्यासागर जी के व्यक्तित्व एवं शैक्षिक विचारों का अध्ययन" लिखा है।

15. श्रीमती प्रतिभा जैन (शिक्षिका-लिटिल स्टार पब्लिक स्कूल, मकरोनिया, सागर, म.प्र.) के द्वारा "आचार्य श्री विद्यासागर जी की कृति 'मूकमाटी' का शैक्षिक अनुशीलन" डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के अन्तर्गत विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय के डॉ. बी.पी. श्रीवास्तव के निर्देशन में वर्ष 1993 में लधु शोध प्रबन्ध एम.एड. हेतु लिखा गया।

16. डॉ. (श्रीमती) माया जैन (द्वारा-डॉ. उदयचन्द्र जैन, अध्यक्ष-प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, आवास-'पिउकुंज' 3-अरविन्द नगर, जैन स्थानक के पास-393 001 उदयपुर, राजस्थान) के द्वारा सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के अन्तर्गत विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के एसोशिएट प्रोफेसर डॉ. पी.आर. मालीवाल के निर्देशन में पी-एच.डी. हेतु शोध प्रबन्ध लिखा गया। यह प्रबंध भगवान् ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर, संघी जी, सांगानेर-303 902 (जयपुर) राज. से प्रकाशित हुआ है।

17. श्रीमती मंजुलता जैन (द्वारा-रविकुमार जैन, दूरदर्शन रिले केन्द्र, नरसिंहपुर, म.प्र. के द्वारा बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय,भोपाल, म.प्र. के संस्कृत विभाग के अन्तर्गत डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' (पूर्व सचिव-म.प्र. संस्कृत अकादमी, भोपाल) के निर्देशन में "आचार्य विद्यासागर: व्यक्तित्व एवं कृतित्व" विषय पर पी-एच.डी. हेतु शोधरत हैं।

18. सुश्री अनीता जैन (द्वारा-शीतलचन्द्र जैन, जैन स्टील एवं फर्नीचर मार्ट, सिलवानी (रायसेन) म.प्र.) के द्वारा बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल के अन्तर्गत शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,भोपाल, म.प्र. के डॉ. प्रदीप खरे, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग के मार्गदर्शन में वर्ष 1997 में लघु शोध प्रबन्ध आलेखित किया गया।

19. श्रीमती सुनीता दुबे (ओ. सहा. प्राध्यापक-एस.एल. जैन महाविद्यालय, विदिशा द्वारा-श्री रमेश दुबे, गाँधी नगर कॉलोनी, टीलाखेड़ी रोड, विदिशा म.प्र.) के द्वारा बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल म.प्र. के अन्तर्गत डॉ. शीलचन्द्र जैन पालीवाले/ हिन्दी विभागाध्यक्ष, एस.एस.एल. जैन कॉलेज, विदिशा- 464001, आवास-19, वाचनालय मार्ग, विदिशा, म.प्र. के कुशल निर्देशन में सन् 2002 में "आचार्य विद्यासागर की लोकदृष्टि और उनके काव्य का अनुशीलन" विषय पर पी-एच.डी. हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

20. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' (पूर्व अध्यक्ष-प्राकृतिक विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर, आवास-113, तुकाराम की चाल, न्यू एक्सटेंशन एरिया, सदर, नागपुर-440001, महाराष्ट्र) के द्वारा नागपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत "मूकमाटी: चेतना के स्वर" नाम से डी.लिट्. की उपाधि (दूसरी बार) प्राप्त की गई। यह प्रबन्ध ऋषभ कुमार जेजानी द्वारा जेजानी चेरीटेबल ट्रस्ट, इतवारी, नागपुर, महाराष्ट्र से वर्ष 1995 में प्रकाशित हुआ है।

21. श्रीमती प्रभा सिंघई (द्वारा-श्री प्रकाश 'डूडावाल' सिंघई मशीनरी स्टोर्स, बड़ागाँव धसान (टीकमगढ़) ने डॉ. के.एल. जैन ने (हिन्दी विभागध्यक्ष-शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़ म.प्र.) के मार्गदर्शन में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र. के अन्तर्गत "आचार्य विद्यासागर की हिन्दी साहित्य को देन" विषय पर पंजीयन कराया है।

22. श्रीमती मीना जैन (द्वारा-श्री सुनील जैन, सुनील किराना स्टोर्स, मेन रोड, ओबेदुल्लागंज-464 993 (रायसेन) म.प्र. के द्वारा बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल म.प्र. के अन्तर्गत डॉ. मधुबाला गुप्ता (प्राध्यापिका-हिन्दी विभाग, सरोजिनी नायडू स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. के निर्देशन में एवं डॉ. रतनचन्द्र जैन (पूर्व प्राध्यापक-प्राकृत एवं तुलनात्मक भाषा विभाग, भोपाल) के मार्गदर्शन में "मूकमाटी का शैलीपरक अनुशीलन" विषय पर पी-एच.डी. का शोध प्रबन्ध आलेखित किया जा रहा है।

23. संजय मिश्रा (द्वारा-एस.एस. तिवारी, सुभाष मार्ग, उर्रहट,रीवा- 486 001, म.प्र.) के द्वारा अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र. के अन्तर्गत डॉ. दिनेश कुशवाह प्राध्यापक-महाकवि केशव अध्यापन एवं अनुसंधान विभाग, अ.प्र. सिहं वि. विद्यालय,रीवा के मार्गदर्शन में सन् 2000 में एम.फिल. का लघु शोध प्रबन्ध "मूकमाटी महाकाव्य में रसों एवं बिम्बों का अनुशीलन" विषय पर लिखा गया।

24. सुश्री अमिता जैन (द्वारा-श्री बी.एल.जैन, जनता इलेक्ट्रिक स्टोर्स, बड़ा बाजार, सागर-470002 म.प्र.) के द्वारा डॉ. (श्रीमती) सरोज गुप्ता (सहा. प्राध्यापिका-हिन्दी विभाग गर्ल्स डिग्री कॉलेज,सागर म.प्र.) के निर्देशन में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र. से "हिन्दी महाकव्य परम्परा में मूकमाटी' का अनुशीलन" विषय पर पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध लिखा जा रहा है।

25. सुश्री रश्मि जैन (सहायक प्राध्यापिका-हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, आवास-दिनेश क्लाथ स्टोर्स,सर्वोदय चौक, बीना-470113 (सागर)म.प्र.) के द्वारा डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र. के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत डॉ. (श्रीमती)सन्ध्या टिकेकर (सहायक प्राध्यापिका-हिन्दी विभाग, शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (सागर) म.प्र. के निर्देशन में "आचार्य श्री विद्यासागर जी के साहित्य में उदात्त मूल्यों का अनुशीलन" विषय पर पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध आलेखित किया जा रहा है।

26. सुश्री कृष्णा पटेल के द्वारा प्रोफेसर डॉ. कौशल प्रसाद मिश्र (हिन्दी विभागाध्यक्ष, महाकवि केशव एवं अनुसंधान केन्द्र अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय,रीवा म.प्र.)के निर्देशन में एम.फिल. हेतु सन् 2001 में "आचार्य विद्यासागर और उनके काव्य: एक अनुशीलन" विषय पर लघु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया।

27. संजय कुमार मिश्रा (द्वारा-कृष्ण चन्द्र मिश्र 'बल्ले बसगड़ी', मु.पो. अतरैला नं. 12, पिन-486 226 व्हाया-चाकघाट, रीवा, म.प्र.) के द्वारा प्रोफेसर डॉ. कौशल प्रसाद मिश्र (हिन्दी विभागाध्यक्ष-महाकवि केशव अध्यापन एवं अनुसंधान केन्द्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र. के कुशल मार्गदर्शन में "कामायनी और मूकमाटी महाकाव्य का शास्त्रीय अध्ययन विषय पर पी-एच.डी. शोधोपाधि हेतु प्रबन्ध आलेखित किया जा रहा है।

28. आदित्य कुमार वर्मा (101, बालाजी अपार्टमेण्ट्स, 24, टेलीफोन नगर, कनाडिया मार्ग, इन्दौर, म.प्र.) के द्वारा डॉ. संगीता मेहता (सहायक प्राध्यापिका-संस्कृत विभाग, शासकीय विभाग, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर म.प्र.) के निर्देशन में वर्ष 2001 में देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर, म.प्र.) के अन्तर्गत "आचार्य श्री विद्यासागर जी के शतकों का साहित्यिक अनुशीलन" नाम से लघु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया।

29. सुश्री निधि जैन 'देवा' (सुमति सिल्क मिल्स,95, केवल लाइन,दूसरा माला, रूम नं. 10, गायवाटी, कालका देवी, मुम्बई- 400002, महाराष्ट्र) के द्वारा डॉ. के.एल.जैन (हिन्दी विभागाध्यक्ष, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़, म.प्र. के द्रव्य मार्गदर्शन में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग सागर, म.प्र. के अन्तर्गत "आचार्य श्री विद्यासागर जी के 'मूकमाटी' महाकाव्य का अनुशीलन" विषय पर पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध लिखा जा रहा है।

30. श्रीमती निधि गुप्ता, टीकमगढ़ के द्वारा अवधेश प्रताप विश्वविद्यालय, रीवा, म.प्र. हिन्दी विभाग के डॉ. के.एल. जैन (हिन्दी विभागध्यक्ष-शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़, म.प्र. के कुशल निर्देशन में "आचार्य श्री विद्यासागर के साहित्य में जीवन-मूल्य" विषय पर वर्ष 2001 से पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध लेखन किया जा रहा है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी की साहित्यिक प्रतिभा का निदर्शन 'मूकमाटी' महाकाव्य में देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ पर देश-विदेश के लगभग 300 साहित्य मनीषियों ने अपने आलोचनात्मक आलेख लिखे हैं। आपका बहुतर साहित्य "आचार्य विद्यासगार: समग्र" एवं "आचार्य विद्यासागर ग्रन्थावली" के नाम से भी 4 भागों में प्रकाशित है। सीकर (राज.) वर्ष 1998 में आयोजित अखिल भारतीय विद्वत्संगोष्ठी (षष्ठ) में लगभग 75 विद्वानों के द्वारा आचार्य श्री के समस्त वाङ्मय पर आलेखित आलोचनात्मक शोध निबन्ध महाकवि आचार्य विद्यासागर ग्रन्थवली परिशीलन शीर्षक से 'भगवान् ऋषभदेव' ग्रन्थामाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघी जी,सांगानेर -जयपुर (राजस्थान) से प्रकाशित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री विद्यासागरजी की पूजा

मुनि श्री योगसागर

(वसन्ततिलका छन्द)

अध्यात्म के निलय में जिनका निवास,
शद्धोपयोगमय उज्ज्वल है प्रकाश।
वैराग्य का पवन ही बहता जहाँ है,
विद्या-सागर सदा रमते वहाँ हैं॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्
ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्
ॐ ह्री आचार्य श्री विद्यासागर मुनीन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

पीयूष सागर जहाँ लहरा रहा है,
ऐसा सुयोग अति दुर्लभ से मिला है।
श्रद्धा समेत इसमें डुबकी लगायें,
ये जन्म-मृत्यु भवरोग विलीन होयें॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः जन्मजरामृत्यु विनाशानाय जलं।

श्रद्धामयी सुखद चन्दन लेप द्वारा,
आत्मीय दाह अति तीव्र उसे निवारा।
है दीप्तिमान तव गात्र सुशोभता है,
मानो सुधाकर सुधा बरसा रहा है॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः भवआतापविनाशानाय चन्दनं।

त्रैयोग योगमय चिन्मयकी प्रतीति,
आत्मा निजानुभव में रममान होती।
ये पाद-पद्म द्वय की शरणा सु-लेता,
भाई अनन्त सुख अक्षय रूप होता॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं।

है कामदेव सम सुन्दर कान्ति काया,
औ शक्ति है मदन के मद को हराया।
है वीतराग बल ही सब में बलाढ्य,
मैं क्या कहूँ सकल सन्त कहें गुणाढ्य॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः कामबाण विनाशनाय पुष्पं।

हो कर्म की निरजरा इसमें सुलग्न,
हैं निर्विकल्प समता-रस में निमग्न।
तो भूख प्यास फिर क्यों किसको सताये,
सच्चा मुमुक्षु विजयी अघ को नशाये॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नेवेद्यं।

निर्द्वंद्व निर्मद विराग अकंप ज्योति,
धारे सुजीवन अहो बन जाये मोती।
आलोक पुंज रवि की शरणा मिली है,
अज्ञान का तम विनाश अवश्य ही है॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः मोहांधकार विनाशनाय दीपं

कोई प्रयोजन किसी की नहीं उपेक्षा,
ना हैं किसी जगत से करते अपेक्षा।
निर्मोह ज्ञान तप संयम ध्यान में है,
यों निर्जरा सतत संवर को लिये हैं॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः अष्ट कर्म विध्वंसनाय धूपं।

सम्यक्त्व पुष्प यह संयम डाल पे है,
आस्था सुगन्ध मृदु आर्जव धर्म से है।
पीयूष मोक्ष-फल तो इससे फलेगा,
ये फूल ही फल स्वरूप अहो ढलेगा॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः मोक्ष फलप्राप्तये फलं।

मैं भाव भक्ति स्तव वन्दन अर्चता हूँ,
आराध्य मंगलमयी गुरु गीत गाऊँ।
ये अष्ट द्रव्य मम कर्म विनाशकारी॥
अल्हादरूप अपवर्ग सुलाभकारी॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः अनर्ध्यपदप्राप्तये अर्घम्।

दोहा

ज्ञान सरोवर में खिला विद्या पुष्प सरोज।
धर्म-ग्रन्थ की महक में, भक्त भ्रमर को मौज॥

जयमाला

निर्ग्रन्थ सन्त भगवन्त स्वरूपता है,
निर्भीक निःस्पृह विशाल उदारता है।
ये कर्ण-धार भवसिन्धु उबारते हैं,
निर्लिप्त पंकज सरोवर ज्ञान में हैं॥

है पूज्य नाम तव ही प्रथमानुयोग,
जो क्षेत्र में विचरते करणानुयोग
चरित्र ही परम है चरणानुयोग,
सत्यार्थ चिन्तन यथार्थ द्रव्यानुयोग।

आश्चर्य है समय-सार सजीव पाया,
श्री ज्ञानसागर मुनीन्द्र इसे रचाया।
चारित्र-पत्र पर ही रचना हुई है,
बेजोड़ है अतुलनीय अपूर्वता है॥

मिश्री घुली मधुर दुग्ध क्षुधा मिटाये,
जो शान्ति-वर्धक निरामयता बढ़ाये।
त्यों भारती तव अलौकिक पुण्यशाली,
आबाल-वृद्ध मनमोहक शान्तिवाली॥

यो दत्तचित्त गणपोषण कार्यता में,
संपूर्ण संघ अनुशासनशीलता में।
है बालब्रह्म सब शिष्य सुशोभते हैं,
जो ज्ञान-ध्यान-तप में लवनीनता है॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री विद्यासागरेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यम्।

दोहा

विशाल विद्या सिन्धु में, भरा क्षीर सा नीर।
स्नान करो इस तीर्थ में, बनो सभी अतिवीर॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचास्तिकाय की 111वीं गाथा प्रक्षिप्त है

स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया

रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला बम्बई से प्रकाशित भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य कृत पंचास्तिकाय के द्वितीय संस्करण में गाथा नं. 111 इस प्रकार है:

तित्थावर तणु जोगा, अणिलाणल काइया य तेसु तसा।
मण परिणाम विरहिदा, जीवा एइंदिया णेया ॥111॥

अर्थ- पृथ्वी, जल, वनस्पति, ये तीन स्थावर हैं और वायु, अग्नि त्रस हैं। (ये) मनोभाव से रहित एकेन्द्रिय जीव जानने चाहिए।

इस गाथा में अमृतचन्द्र के टीका रूप वाक्य इस प्रकार दिये हुए हैं-

"**पृथ्वीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वनियमोऽयं**"।

परन्तु ये वाक्य टीका रूप नहीं है, ये तो 112वीं गाथा के उत्थानिका वाक्य हैं, क्योंकि 112वीं गाथा पर अमृतचन्द्र के और कोई दूसरे उत्थानिका वाक्य नहीं पाये जाते। इसके सिवा जयसेनाचार्य ने भी अपनी टीका में ये वाक्य 112वीं गाथा पर ही दिये हैं जो इस रूप में हैं-

"**अथ पृथ्वीकायिकादीनां पंचानामेकेन्द्रियत्वं नियमयति**"।

इस प्रकार इस 111वीं गाथा पर अमृतचन्द्र की कोई टीका नहीं पाई जाती और न कोई उत्थानिका वाक्य पाये जाते हैं अत: यह गाथा साफ प्रक्षिप्त मालूम होती है। अगर मूल ग्रन्थकारकृत होती तो अमृतचन्द्राचार्य जरूर इस पर वाक्य और टीका लिखते; कम-से-कम तेजोवायु के त्रसत्व का तो समाधान अवश्य ही करते।

(2) धवलाकार वीरसेनाचार्य ने भी पंचास्तिकाय की गाथाओं को अनेक जगह प्रमाणरूप में उद्धृत किया है। इससे यह ग्रन्थ धवलाकार को भी मान्य रहा है। अगर पंचास्तिकाय में 111वीं गाथा होती तो धवलाकर कभी तेजोवायु के त्रसत्व का खंडन नहीं करते, जैसा कि धवला पुस्तक 1 पृष्ठ 266 और 276 तथा पुस्तक 13 पृष्ठ 365 पर पाया जाता है।

(3) दिगम्बर सम्प्रदाय में कुन्दकुन्द बहुत ही प्राचीन और सर्वाधिक मान्य आचार्य रहे हैं, अगर तेजोवायु को त्रस मानने का उनका मत होता तो बाद के अनेक दि. ग्रन्थकार इसका जरूर अनुसरण करते, किन्तु किसी ने भी इसका अनुसरण नहीं किया है, प्रत्युत अनेक दि. ग्रन्थकारों ने इस मान्यता का खण्डन ही किया है। उदाहरण के लिए मोक्षशास्त्र अ. 2 सूत्र 12 का अकलंकदेव कृत राजवार्तिक भाष्य देखो।

(4) भगवद् कुन्द-कुन्द ने अपने किसी अन्य ग्रन्थ में भी तेजोवायु को त्रस नहीं लिखा है। प्रत्युत 'त्रस' द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीवों को ही बताया है। देखो मूलाचार अ. 5 गाथा 8 और 21।

(5) 'पंचास्तिकाय' की गाथा 39 में स्थावर और त्रस जीवों का लक्षण इस प्रकार दिया है-स्थावरों के कर्मफल चेतना होती है अर्थात् स्थावर कर्मोदय के द्वारा आत्मशक्ति से हीन-निरुद्यमी-विकल्प रूप कार्य करने में असमर्थ होकर अप्रकट रूप से कर्मों के फल को भोगते हैं। त्रस : रागद्वेष मोह की विशेषता लिए उद्यमी होकर इष्टानिष्ट कार्य करने में समर्थ होते हैं, इनके कर्म चेतना होती है।

इस कथन से गाथा 111 का कथन विरुद्ध पड़ता है अर्थात् तेजोवायु त्रस नहीं हो सकते हैं। अत: 111वीं गाथा क्षेपक प्रमाणित होती है। अगर उसे क्षेपक नहीं माना जायगा, तो ग्रन्थ में परस्पर विरुद्धता का दोष उत्पन्न होगा।

(6) गाथा 112 के 'एदे' आदि वाक्यों का सम्बन्ध गाथा 110 से ही ज्यादा उपयुक्त बैठता है, 111 से नहीं, इससे भी यह 111वीं गाथा बीच में प्रक्षिप्त हो गई सिद्ध होती है।

(7) गाथा 111की दूसरी लाइन शब्दश: वही है जो 112वीं गाथा की दूसरी लाइन है। इस प्रकार ग्रन्थ में पुनरुक्ति दोष भी आता है, जो मूल ग्रन्थकार कुन्द-कुन्द के इस ग्रन्थ में कहीं नहीं पाया जाता। इससे भी 111वीं गाथा प्रक्षिप्त होनी चाहिए।

(8) अगर 111वीं गाथा को हटा दिया जाय, तो ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय में कोई खामी नहीं आती, प्रत्युत पुनरुक्ति और परस्पर विरुद्धतादि के दोष भी मिट जाते हैं।

शंका-इस गाथा को हटाने पर त्रस और स्थावर के कथन का ग्रन्थ में अभाव होगा।

समाधान- त्रस और स्थावर का कथन तो गाथा 39 में पहिले ही कर दिया गया है। इसके सिवा त्रस और स्थावर का कथन करना इस ग्रन्थ के लिए कोई आवश्यक अंग नहीं है। दूसरे अधिकार में जीवों का इन्द्रिय भेद से कथन किया है, त्रस-स्थावर रूप से नहीं, जैसा कि गाथा 121 से लक्षित होता है, यही बात अमृतचन्द्र ने गाथा 118 के उत्थानिका वाक्य में कही है।

शंका- बालावबोध हिन्दी टीका में -"आगे पृथ्वीकायादि पाँच थावरों को एकेन्द्रिय जाति का नियम करते हैं" ऐसा उत्थानिका वाक्य देकर गाथा, 111-112 को युग्म रूप दिया है अत: ये गाथाएँ युग्म होनी चाहिए। अन्य हस्तलिखित प्रतियों में भी इन्हें युग्म ही प्रकट किया है और पूर्वोक्त "पृथ्वीकायिकादानां पंचानामेकेन्द्रियत्वनियमोऽयं" अमृतचन्द्र के इन वाक्यों को उत्थानिका रूप में गाथा नं. 111 पर दिया है।

समाधान - ये प्रतियाँ ज्यादा प्राचीन नहीं हैं। जयसेनाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(वि.सं. 1369) ने इन दोनों गाथाओं को अलग-अलग माना है, युग्म नहीं, क्योंकि उन्होंने इनके उत्थानिका वाक्य और टीका वाक्य अलग-अलग दिये हैं। इन गाथाओं को युग्म मानने पर भी जो दोष पहिले बता आये हैं, उनका कोई निरसन नहीं होता।

शंका -जयसेनाचार्य ने 111वीं गाथा के कथन में व्यवहार से तेजोवायु को त्रस मानना बताया है, इसमें क्या बाधा है?

समाधान-धवलाकार और राजवार्तिककार ने तेजोवायु के त्रसत्व का खण्डन किया है, वह व्यवहार से ही किया है अत: व्यवहार से भी तेजोवायु का त्रसत्व उचित नहीं है। मूल गाथा में भी व्यवहार से मानने की कोई बात नहीं है। अगर फिर भी व्यवहार का ही आग्रह हो, तो जल को भी त्रस बताना चाहिए था उसे स्थावर क्यों बताया? क्या कुन्दकुन्द ऐसा स्खलन कर सकते हैं?

इसके सिवा इस कथन में एक आपत्ति और है, वह यह कि आगे जो द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों का वर्णन है उन्हें क्या माना जाय? त्रस या स्थावर? या कोई अन्य? यह कुछ नहीं बताया गया है।

इस प्रकार के युक्ति और आगम के विरुद्ध तथा अनेक दोषों से युक्त कथन कुन्द-कुन्द के नहीं हो सकते।

(9) मोक्षाशास्त्र अ. 2 सूत्र 14 का दिगंबरीय पाठ 'द्वीन्द्रियादयस्त्रसा:' है किन्तु श्वेतांबरीय पाठ "तेजोवायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रसा:" है। इससे तेजोवायु को त्रस कहने की मान्यता श्वेतांबरीय ही है। ऐसा प्रतीत होता है किसी श्वे. विद्वान् ने 112वीं गाथा के पूर्वार्ध में अपने मत के अनुसार "तित्थावर तणु जोगा अणिलाणलकाइया य तेसु तसा" ये वाक्य बढ़ा दिये। प्रतिलिपिकारादि के द्वारा फिर वे ही 2 अलग-अलग गाथाओं के रूप में निबद्ध हो गये। यह सब अमृतचन्द्र के बाद हुआ है, जयसेन के निम्नांकित कथन से भी इसकी सूचना मिलती है :

जयसेन ने पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति पृ. 9 पर उपोद्घात में लिखा है-"मेरे पाठक्रम से पहिले अधिकार में 111 गाथा हैं और अमृतचन्द्र की टीका के अनुसार 103 गाथाएँ हैं। दूसरे अधिकार में मेरे पाठक्रम से 50 गाथाएँ हैं और अमृतचन्द्र की टीकानुसार 48 गाथाएँ हैं और चूलिका रूप तीसरे अधिकार में 20 गाथायें हैं।"

इस उपोद्घात से साफ लक्षित होता है कि अमृतचन्द्र की टीका के अनुसार दूसरे अधिकार में सिर्फ 48 गाथाएँ ही जयसेन के वक्त थीं, जब कि मुद्रित में दूसरे अधिकार की गाथाएँ 49 दी हुई फलित होती हैं। इस तरह यह एक बढ़ी हुई गाथा वही 111 वीं होनी चाहिए, जिस पर न तो अमृतचन्द्र की कोई टीका है और न उत्थानिका वाक्य, (पहले अधिकार में भी एक गाथा बढ़ी हुई है क्योंकि जयसेन ने अमृतचन्द्र के मत से प्रथम अधिकार में 103 ही गाथायें सूचित की हैं जबकि मुद्रित संस्करण में 104 दी गई हैं।)

इस तरह पंचास्तिकाय की गाथा नं. 111 क्षेपक है, यह सिद्ध होता है। अगर प्राचीन ताड़पत्रीय प्रतियों की खोज की जाय तो उसमें यह गाथा कभी नहीं मिलेगी।

(10) प्रसंगोपात्त त्रस और स्थावर के विषय में नीचे कुछ ज्ञातव्य विवेचन किया जाता है:

(क) "त्रस त्रसनाली में ही होते हैं, बाहर नहीं, स्थावर सारे लोक में व्याप्त हैं" ऐसा शास्त्रनियम है। अगर तेजोवायु को त्रस माना जायेगा तो शास्त्रनियम गलत हो जायेगा, क्योंकि फिर त्रस भी सारे लोक में व्याप्त हो जायेंगे। इस तरह त्रस-स्थावर की भेदरेखारूप त्रसनाली ही व्यर्थ हो जायेगी, अत: तेजोवायु को दि आचार्यों ने त्रस नहीं माना है।

(ख) कर्मग्रन्थों में नाम कर्म की 93 प्रकृतियाँ बताई हैं उनमें त्रस, स्थावर तथा एकेन्द्रिय से पंचन्द्रिय तक 5 जातिनामकर्म ये 7 अलग-अलग भेद बताये हैं। तब प्रश्न होता है कि द्वीन्द्रिय से पंचन्द्रिय तक 4 भेद अलग क्यों बताये? वे तो "द्वीन्द्रियादयस्त्रसा:" इस सूत्र के अनुसार त्रस में आ जाते हैं। इसी तरह एकेन्द्रिय जातिनामकर्म भी अलग क्यों बताया? वह भी स्थावर में आ जाता है। यह मूल कर्म फिलासफी में ही गड़बड़ क्यों है?

समाधान-जो जातिनामकर्म के 5 इन्द्रियभेद बताये हैं, वे पाँचों पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं। और त्रस तथा स्थावर ये 2 अलग नाम कर्म बताये हैं वे जीवविपाकी प्रकृतियाँ हैं। यही इन दोनों में खास अन्तर है। इसी को लक्ष्यकर पंचास्तिकाय की गाथा 39 में स्थावर का लक्षण कर्मफलचेतना का भोक्ता और त्रस का लक्षण कार्य चेतना का भोक्ता बताया गया है जो जीवविपाकित्व की दृष्टि से है। इसमें 'एकेन्द्रिय को स्थावर और 2 से 5 इन्द्रिय को त्रस कहते हैं' इसका भी अन्तर्भाव हो जाता है। पंचास्तिकाय का लक्षण सूक्ष्म-आभ्यंतरिक है। षट्खंडागम, तत्त्वार्थसूत्रादि में द्वीन्द्रियादि को त्रस और एकेन्द्रिय को स्थावर लिखा है, वह स्थूल (बाह्य) कथन है, लक्षण नहीं, उसे फलितार्थ मात्र समझना चाहिए। इस प्रकार दोनों कथनों में कोई विरोध नहीं है, दोनों अलग-अलग विवक्षा से हैं।

पं. कैलाशचन्द्र जी का सम्पादकीय नोट-"विद्वान् लेखक ने पञ्चास्तिकाय की 111वीं गाथा के प्रक्षिप्त होने के सम्बन्ध में जो उपपत्तियाँ दी हैं वे विचारणीय हैं। इतना तो निश्चित प्रतीत होता है कि अमृतचन्द्र के सामने यह गाथा नहीं थी अथवा इसे उन्होंने मान्य नहीं किया था। इस गाथा के नीचे जो एक वाक्य छपा है वह आगे की गाथा का उत्थानिका वाक्य ही होना चाहिए। गाथा 111 से उसका कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।"

'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवर सन्तलाल और उनका सिद्धचक्र विधान

डॉ. कपूरचन्द्र जैन

जैन संस्कृति के अनुसार श्रावक के प्रमुख कर्त्तव्य दान और पूजा हैं-'दाणं पूजा सावयधम्मो'। पूजा की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि जो जिनेन्द्र देव की पूजा करता है वह इहलौकिक यश को प्राप्त कर अविनाशी मोक्षपद प्राप्त करता है-

यः करोति जिनेन्द्राणां पूजनं स्नपनं वा ।
सः पूजामाप्य निःशेषां लभते शाश्वतीं श्रियम्॥

पूजा के साथ-साथ समय-समय पर भावशुद्धि के लिये विशेष पूजाविधानों का उल्लेख भी जैनागमों में प्राप्त होता है। ऐसे विधानों में "सिद्धचक्र विधान" सबसे प्रमुख है, क्योंकि इसमें सिद्ध-भगवन्तों का गुणगान किया गया है तथा सिद्ध-पद प्राप्ति की प्रक्रिया भी बतलाई गयी है। आज तो विधानों की संख्या बहुत है, नये-नये विधान हाल के वर्षों में लिखे गये हैं और लिखे जा रहे हैं, किन्तु कुछ दशक पूर्व तक विधान का अर्थ ही सिद्धचक्र विधान था। इस विधान का आयोजन किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु 'आष्टाह्निक पर्व' में ही इसका आयोजन कब क्यों प्रारंभ हो गया यह, स्वतन्त्र शोध का विषय है। सम्भवतः 'आष्टाह्निक पर्व' के आठ दिन तथा इस विधान की आठ पूजायें होने से इसका आयोजन उक्त पर्व में होने लगा है। यह भी विचारणीय है. कि इस विधान का सम्बन्ध श्रीपाल-मैनासुन्दरी की कथा से कब से कैसे जुड़ गया? (आगे सिद्धचक्र विधान के लिये सि.वि. का प्रयोग हमने किया है।)

आरम्भ में सि.वि. संस्कृत भाषा में लिखा गया था। 18-19वीं शताब्दी में जब हिन्दी का प्रयोग जन-जन में बढ़ने लगा, तो हमारे पूजा-विधान भी हिन्दी में लिखे जाने लगे। सि.वि. की भी हिन्दी में आवश्यकता अनुभव हुई। तब कविवर श्री सन्तताल जी ने हिन्दी भाषामय सि.वि. लिखकर जैन संस्कृति की महती सेवा की। यह संस्कृत सि.वि. का अनुवाद भी है तथा स्वरचित भी। सि.वि. केवल विधान ही नहीं है, उसे हम अध्यात्म विद्या का महाकाव्य भी कह सकते हैं। रस, छंद, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से वह महाकाव्य पद का अधिकारी है। विविध छंदों में आठ पूजाओं या आठ अध्यायों के माध्यम से सन्तलाल जी ने सिद्धों के गुणों का जो वर्णन किया है वह अनूठा है। सन्तलाल जी 'कविवर' पद के सच्चे अधिकारी हैं। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास में उनका नाम बड़े गौरव के साथ लिख जाना चाहिये।

सहारनपुर जनपद के कस्बा नकुड में 1834 ई. में लाला शीलचन्द्र के घर एक बालक का जन्म हुआ। लाला शीलचन्द्र का परिवार जनपद का प्रतिष्ठित परिवार था, जो धर्माचरण में तो निष्ठावान था, ही जाति सुधार और कुरीतिनिवारण में भी अग्रणी था। बालक पर अपने पिता और पितामह का गहरा प्रभाव था, आयु के साथ धर्म के प्रति बालक की रुचि बढ़ती गयी, उसने कभी असत्य भाषण न करने तथा शुभ कार्य में ही रत रहने का संकल्प बचपन में ही ले लिया, सम्भवतः इसी कारण बालका का नाम 'सन्तलाल' प्रचलित हो गया।

सन्तलाल जी की आरम्भिक शिक्षा नकुड में ही सम्पन्न हुई। तदनन्तर रुड़की के थॉमसन कॉलेज में आपने अध्ययन किया और प्रतिष्ठित परीक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु धर्म के प्रति गहन आस्था और समर्पण होने के कारण उस परीक्षा को जीविकोपार्जन का साधन नहीं बनाया। घर पर रहकर ही आप जैन शास्त्रों के अध्ययन में लग गये और स्वाध्याय के बल पर अच्छे विद्वान् बन गये। बाबू सूरजभान वकील ने लिखा है-"यहाँ (नकुड में) पं. सन्तलाल जी जैन हिन्दी भाषा जानने वाले जैन धर्म के अच्छे विद्वान् रहते थे। वह भी बड़े तीक्ष्णबुद्धि थे और न्याय तथा तर्क के शौकीन थे। 'परीक्षामुख' और 'प्रमाणपरीक्षा' को खूब समझे हुए थे।"

सन्तलाल जी की विद्वत्ता और तर्क करने की क्षमता की ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् भी उनका लोहा मानने लगे। उन दिनों जैन समाज और आर्य समाज के बीच शास्त्रार्थ, विशेषतः उत्तर भारत में, प्रायः होते रहते थे। सन्तलाल जी इनमें भागीदारी करते थे और उनके लिखे उत्तर-प्रत्युत्तर भी बड़े गम्भीर और वैदुष्यपूर्ण होते थे। तत्कालीन प्रसिद्ध तर्कशास्त्री पं. ऋषभदास सन्तलाल जी को अपना गुरु मानते थे।

सन्तलाल जी तर्कशास्त्र के पण्डित होने के साथ हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। सहारनपुर जनपद के इतिहास के अनुसार सहारनपुर जनपद के हिन्दी कवियों में सन्तलाल जी का स्थान सर्वोच्च था। सन्तलाल जी छंदशास्त्र के अप्रतिम ज्ञाता थे। उनकी तुलना यदि किसी हिन्दी कवि से की जा सकती है तो वे हैं महाकवि केशवदास, जो अपनी विविध छंदमयी रचनाओं के लिखे विख्यात हैं।

सन्तलाल जी की एक कृति सि.वि. उपलब्ध है, किन्तु वही इतनी गरिमामय है कि उसने सन्तलाल जी को हिन्दी जैन कवियों के उच्चासन पर विराजमान करा दिया है। कहा जाता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि बहुत दिनों तक यह कृति सहारनपुरनिवासी लाला रुडामल जी शामयाना वालों के पास पड़ी रही। उनके तथा श्री मूलचन्द्र किशनदास कापड़िया के अथक प्रयासों से यह प्रकाश में आई।

सिद्धचक्र विधान की महत्ता उसके धार्मिक काव्य होने से तो है ही, वह साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज अतुकान्त कविता का युग है, छन्दोबद्धता आज कविता का अनिवार्य अंग नहीं, परन्तु नई कविता से पूर्व लगभग सभी काव्यशास्त्रियों ने छन्दोबद्धता को काव्य का मूल आधार स्वीकार किया था। कविवर सन्तलाल जी की विशेषता है कि उन्होंने उस सयम प्रचलित सभी छन्दों का प्रयोग सि.वि. में किया है। लगभग पचास तरह के छन्दों का प्रयोग सि.वि. में हुआ है। सभी छन्द शास्त्रीय कसौटी पर खरे उतरते हैं। इतना ही नहीं, संस्कृत के इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वसन्ततिलका, भुजंगप्रयात आदि छंदों को हिन्दी में यथावत् स्वीकार कर और तद्नुरूप रचनाकर सन्तलाल जी ने हिन्दी में नई परम्परा का 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' किया है।

हिन्दी के अन्य जैन कवियों की भाँति सन्तलाल जी की कविता का धार्मिक मूल्यांकन तो अधिक हुआ है, किन्तु साहित्यिक मूल्याकंन न के बराबर हुआ है। यही कारण है कि साहित्य का 'अमृतकलश' होते हुए भी सि.वि. हिन्दी साहित्य में अपना वह स्थान नहीं पा सका, जिसका वह अधिकारी था। इसमें बहुत कुछ दोष जैन समाज का भी है, जिसने अपने साहित्य को मन्दिरों तक ही सीमित कर रखा है।

छन्द शास्त्र/पिंगल शास्त्र के विशेष ज्ञाता सन्तलाल जी ने तत्कालीन प्रचलित दोहा, सोरठा आदि ख्यात छंदों के अतिरिक्त अख्यात या अल्पख्यात छन्दों का भी प्रयोग किया है, इनमें कामिनीमोहन, सुन्दरी, मोतीदाम, लक्ष्मीधरा, शंखनारी, नाराच, अर्ध नाराच, शंखरूपिणी डालर, उल्लाला, चूलिका, माला, चकोर, पायता आदि को लिया जा सकता है। छंद के साथ उपराग या देशीराग के अन्तर्गत परिगणित लोक गीतों से विकसित लावनी का प्रयोग तथा लोक गीतों की धुन पर कतिपय पद्यों की रचना सन्तकाल जी ने की है। वानगी के तौर पर पाँच पद्य यहाँ प्रस्तुत हैं।

भुजंगप्रयात

मनोयोग क्रोधी समारम्भधारी, सदा जीव भोगे महाखेद भारी।
महानंद आख्यात को भाव पायो, नमों सिद्ध सो दोष नाहीं उपायो॥

त्रोटक

दुखकारन द्वेष विडारन हो, वश डारन राग निवारन हो।
भवितारन पूरणकारण हो, सब सिद्ध नमों सुखकारन हो॥

गीता

निज आत्मरूप सुतीर्थ मग नित सरस आनन्द धार हो।
नाशे त्रिविधमल सकल दुखमय, भवजलधि के पार हो॥

अडिल्ल

पंच परम गुरु नाम विशेषण को धरैं।
तीन लोक में मंगलमय आनन्द करैं॥
पूरण कर थुति नाम अन्त सुखकारणं।
पूजूँ हूँ युतभाव सुअर्घ उतारणं॥

लावनी

तुम परमपूज्य परमेश परमपद पाया।
हम शरण गही पूजैं नित मनवचकाया॥
निजरूप मगन मन ध्यान धरै मुनिराजै।
मैं नमूं साधु सम सिद्ध अकंप विराजै॥

सि.वि. का अंगी रस अध्यात्मप्रधान शान्त रस है। पूरे काव्य में अध्यात्म की जो धारा बह रही है, उसमें अवगाहन कर न जाने कितने भव्य जीवों ने अपने कल्याण का पथ प्रशस्त किया होगा। इसकी भाषा सरल सरस और प्रवाहमयी है, जिसमें देशी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। संस्कृत के प्रभाव से प्रभावित एक पद्य है-

जय अमल अनूपं शुद्ध स्वरूपं निखिल निरूपं धर्म धरा।
जय विघन नशायक मंगलदायक तिहुँ जगनायक परमपरा॥

सि.वि. में शब्द तथा अर्थ दोनों तरह के अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में अनुप्रास सन्तलाल जी का प्रिय अलंकार है, इसका सातिशय प्रयोग पूरे काव्य में पदे-पदे देखा जा सकता है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का बहुधा प्रयोग हुआ है। उभयालंकार संसृष्टि का भी प्रयोग हुआ है। तीनों के एक-एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं-

शब्दालंकार- अनुप्रास

जय मदन कदन मन करण नाश, जय शान्तिरूप निज सुख विलास।
जय कपट-सुभट पट करन सूर, जय लोभ क्षोभ मद दम्भ चूर॥

अर्थालंकार- उपमा

फैली दीपन की जोति, अति परकाश करै।
जिम स्याद्वाद उद्योग, संशय तिमिर हरै॥

उभयालंकार- उत्प्रेक्षा-रूपक की संसृष्टि

तुम चरण चन्द्र के पास पुष्प धरैं सोहें,
मानू नक्षत्रन की रास सोहत मन मौहें।
अन्तरगत अष्ट स्वरूप गुणभई राजत हैं,
नमूं सिद्धचक्र शिवभूप अचल विराजत हैं॥

इस प्रकार सि.वि. भाषा, भाव, रस, छन्द अलंकार आदि सभी दृष्टियों से असाधारण अध्यात्म साहित्य-कृति है इसका साहित्यिक मूल्यांकन एक काव्य की दृष्टि से भी होना चाहिये।

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
श्री कुन्द-कुन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
खतौली-251201 (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्त व्यसन त्याग की वैज्ञानिक अवधारणा

प्राचार्य निहालचंद जैन, बीना

श्रावक का सौन्दर्य उसका शील एवं सदाचरण होता है। सम्यक्चारित्र की अन्विति सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान से होतीहै। श्रावक रत्नत्रय का आराधक होता है। शील से रहित श्रावक का ज्ञान, गधे की पीठ पर लदे हुए बोझ के समान होता है।

जीवन का कल्पवृक्ष-मनुष्य का शील एवं सदाचरण होता है। क्योंकि उससे वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है।

सदाचरण/शील को भंग करने वाले सप्त व्यसन होते हैं, जो महापाप के बीज और बुद्धि-विवेक को नष्ट करने वाले होते हैं।

द्यूत मांस-सुरा-वेश्या-चौर्याखेटपराङ्गना।
महापापनि सप्तानि, व्यसनानि त्यजेद् बुधः॥

ये सात व्यसन है- द्यूत (जुआ), मांस-भक्षण, सुरा-पान, वेश्या और परस्त्री गमन, चोरी करना तथा आखेट (शिकार) करना। द्यूत में झूठ व चौर्य पाप, मांस-भक्षण और आखेट में हिंसा पाप, मद्यपान में हिंसा व झूठ पाप तथा वेश्या व परस्त्रीगमन में कुशील पाप गर्भित है, अतः ये दुर्गति के कारण हैं।

व्यसन का सम्मोहन व्यक्ति को नैराश्य, मानसिक तनाव, घुटन, आत्महत्या, नृशंसता और पशुता की ओर प्रेरित करता है।

यह ऐसा मोहक विषफल है, जिसे विवेक से रहित मूढ़ जीव एक बार चखकर बार-बार भोगने की लालसा करने लगता है। व्ससन, वासनाओं के गर्भ से उपजी ऐसी इच्छा है, जो मनुष्य के आचरण पर सीधा प्रभाव डालती है और वह पतन के गर्त में गिरता जाता है।

व्यसन विपत्ति और विनाश का खुला निमन्त्रण है।

व्यसन मय जीवन, घोर अंधकार की काली रात्रि है जो अणुव्रत के प्रकाशमय दीप से अपने कल्याण का मार्ग देख सकता है।

धर्म और संत-महापुरुषों का आह्वान एक व्यसनमुक्त समाज का निर्माण करना। व्यसनमुक्त समाज ही अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। यदि वसुन्धरा पर वात्सल्य/करुणा/प्रेम /अहिंसा की फसलें उगाना हों, तो व्यसनमुक्त समाज का एक प्रशस्त संकल्प हो।

1. मांस-भक्षण - एक ऐसा व्यसन है, जिसके कारण शेष छह व्यसन अपने आप जीवन में प्रवेश कर जाते हैं।

मांसाहार शरीर को शक्ति नहीं वरन् एक किस्म की विकृत उत्तेजना देता है। अमरीकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी कैंटुकी, अपने प्रचार तंत्र से युवाओं में ऐसा क्रेज पैदा करने में सफल है, जो मांसाहार को आधुनिक संस्कृति का प्रतीक और शक्तिदायक मानता है। यही कारण है कि 20 वर्षों से मांसाहार का उत्पादन 40 से 45 प्रतिशत बढ़ा है।

कोई भी सम्प्रदाय/ धर्म मांस-भक्षण की अनुमति नहीं देता।

इसमें न तो कार्बोहाईड्रेट जैसा ऊर्जादायी तत्त्व होता है और न ही फाइबर जो भोजन को पचाने में मदद करता है। यह रक्त में कॉलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ा देता है, जिससे हार्ट अटैक का खतरा बढ़ जाता है। आँतों का कैंसर, संधिवात, रक्तचाप, किडनी का रोग, मांसाहार के कारण असामान्य रूप से बढ़ रहे हैं।

हारवर्ड मेडिकल स्कूल ऑफ अमेरिका के डॉ. वॉचमेन एवं डॉ.डी.एस. बर्मस्टीन ने अपनी खोजों से यह तथ्य निकाला कि जिनकी हड्डी कमजोर है उन्हें मांस एकदम छोड़ देना चाहिए। लंदन के डॉ. एलैग्जेण्डर हेग ने बताया कि मांस में यूरिक एसिड विष प्रमुख रूप से पाया जाता है, जो टी.बी., जिगर की खराबी, गठिया रक्तअल्पता हिस्टीरिया, सांस रोग को निमन्त्रण देता है। नोबल पुरस्कार विजेता (1985) डॉ. माइकल एस. ब्राउन तथा डॉ. जोसेफ आई. गोल्ड स्टीव ने सिद्ध किया है कि पशुओं का कत्ल से, उनके भीतर एक ऐसे पदार्थ को निर्मित करता है, जो रक्तचाप बढ़ाता तथा असाध्य रोगों को उत्पन्न करता है। अतः मांस-भक्षण पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अभक्ष्य/त्याज्य है।

2. मद्यपान - मांसाहार मद्यपान के लिए प्रेरित करता है। मांस एक अप्राकृतिक आहार है, जिसे पचाने के लिए मनुष्य को एल्कोहल सहायक होता है। अतः मांसाहारी शराब का आदी हो जाता है। मद्यपान में वे सभी वस्तुएँ आ जाती हैं जो स्नायुशैथिल्य को बढ़ाकर उत्तेजना व निर्बलता बढ़ाती है इसमें धूम्रपान, चरस, अफीम, ब्राउन शुगर, भांग, हेरोइन आदि आ जाते हैं। ये वस्तुएँ शरीर व मस्तिष्क को बेकाबू करके कम्पन रोग बढ़ा देती हैं। नशा चाहे शराब का हो या नशीली वस्तुओं का, पुरुषार्थ को नष्ट करने वाला कामोत्तेजक होता है।

शराबी व्यक्ति की कामाग्नि ईंट के भट्टे की तरह होती है, जो अन्दर ही अन्दर जलती रहती है, जिससे वह नपुंसकता को प्राप्त हो जाता है क्योंकि उसकी वीर्य शक्ति शीघ्र स्खलित हो जाती है। मद्य-व्यसनी की इन्द्रियां अशक्त हो जाती हैं। करोड़पति का बेटा जब शराबी हो जाता है तो उसका घर कलह का केन्द्र बन जाता है।

शराब फल, जौ, गुड़, महुआ आदि को सड़ाकर एवं निचोड़कर आसवन विधि से तैयार की जाती है जिसमें अनन्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव/द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति एवं उनका मरण होता है अतः हिंसा का महादोष लगता है। मद्य की एक बूँद में इतने सूक्ष्म जीव होते हैं कि यदि वे बड़े होकर फैल जाएँ तो तीनों लोक भर सकते हैं।

3. शिकार - मांसाहारी शिकार करने के लिए प्रेरित होता है। शिकार उसका हत्याजन्य खेल है। आज नये-नये खुल रहे यांत्रिक कत्लखाने 'शिकार' के परिवर्द्धित / नये संस्करण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनकी इस देश में संख्या 36 हजार से ऊपर पहुँच चुकी है। इनमें गोवंश की जो निर्मम हत्या कर कहर ढाया जाता है वह शिकार का ही बीभत्स रूप है।

मांसाहार और चमड़ा उद्योग- यांत्रिक कत्लखाने व्यापारिक शुभ-लाभ के सिद्धान्त को अपनाकर वृहद्रूप ले चुके हैं जिसमें राज्य / देश की व्यापार नीति काम कर रही है।

आगम में उल्लेख है कि शिकार खेलने वाला मनुष्य भवभव में अल्पायुधारी, विकलांगी, रोगी, अंधा, बहिरा, बौना, कोढ़ी, नपुंसक और दुष्ट होता है। जितने भी दु:सह दुख दिखाई देते हैं, वह सभी दु:ख, जीवों का घात करने वाला प्राणी पाता है। अत: इस राक्षसी-प्रवृत्ति को त्याग देना श्रेयस्कर है।

4. जुआ - यह ऐसा व्यसन है, जिसमें हजारों सभ्य परिवार दीनता/भुखमरी के कगार पर आकर खड़े हैं। लाटरी, जुए का पंजीकृत षडयन्त्र है। राज्य सरकारें आय बढ़ाने के लिए इसे प्रोत्साहित करती है जो अनैतिक है। जुआरी सदैव चिन्तातुर रहता है। उसकी नींद और भूख दोनों नष्ट हो जाते हैं और वह अशान्त चित्त रहने लगता है। उसके हृदय की धड़कन असामान्य हो जाने से आयु क्षीण होने लगती है।

जुआ सम्पूर्ण अनर्थों का मुखिया, मायाचार का घर, झूठ व चोरी का संगम स्थान होता है।

5-6. वेश्या गमन व परस्त्री सेवन- ये दोनों व्यसन कुशील पाप के पोषक और जीवन की तेजस्विता को नष्ट करने वाले हैं।

यौवन के जोश में कामांध वीर पुरुष, साध्वी सुन्दर स्त्री को देखकर भी डिग जाते हैं फिर कायर पुरुषों की बात ही क्या?

ज्ञानार्णव में कामी व्यक्ति के दस वेग बताये हैं-

1. पहले परस्त्री में रमण का भाव रखता है कि कब दूसरे की स्त्री को अपनी भोग्या बनाऊँ। 2. परस्त्री को देखने का भाव करता है और उसे प्राप्त करने के साधन खोजता है। 3. परस्त्री उपलब्ध न होने पर खेद खिन्न होता है। 4. उसका शरीर काम ज्वर से पीड़ित हो जायेगा। 5. शरीर जलने लगेगा। 6. भोजन-पानी छोड़ देगा। 7. मूर्च्छा आनी प्रारम्भ हो जायेगी। 8. उन्मत्तता के कारण यद्वा तद्वा बकने लगता है। 9. उसकी मरणासन्न अवस्था भी हो जाती है और 10. वह मर जाता है। इस प्रकार परस्त्री लम्पटी व्यक्ति महाभारत में पाण्डवों के वनवास के अंतिम वर्ष में राजा विराट के पुत्र कीचक की भाँति, भीम द्वारा वध को प्राप्त होता है, जिसने द्रौपदी के ऊपर कुदृष्टि डालकर उस पर मोहित हो गया था। रावण की सोने की लंका कामाग्नि से ध्वस्त हो गयी थी।

इसी प्रकार परपुरुष में रत कामुक स्त्री एक सर्पणी के समान होती है जो अपनी कुलमर्यादा नष्ट करके घोर पाप-भागिनी होती है। अत: यह व्यसन हेय है।

वेश्या का भोग करने वाला मूढ़ मद्य और मांस का परित्यागी नहीं होता। वेश्या कुत्ते के मुँह में लगी हड्डी के समान आचरण करती है। वेश्या के प्रेम में कामान्ध अपनी कुशलता व बड़प्पन को नष्ट करके जीवन बर्बाद कर देता है। वेश्या माँस खाती है, शराब पीती है, धन के लिए झूठ बोलकर प्रेम का स्वांग रचती है। वह कुटिल मन से लोगों के मुँह व लार को चाटती है। अत: वेश्या इस पृथ्वी का नरक ही है।

वेश्या और पर पुरुष में रत स्त्री, धोबी की शिला के समान होती है, जिस पर ऊँच-नीच पुरुषों के निंदनीय घृणित कर्म से वीर्य और लार आदि मल बहते हैं। ये दोनों व्यसन ब्रह्मचर्य को नष्ट करके शरीर को निस्तेज और आत्मा को पतित करते हैं।

मेडिकल शोध ने सिद्ध किया है कि 25 बूँद वीर्य में 60 मिलियन (छह करोड़) से 110 मिलियन तक सूक्ष्म जीव रहते हैं। एक बार सम्भोग करने से स्त्री योनि में स्थित नौ लाख सूक्ष्म जीवों की हत्या होती है। अत: ये व्यसन हिंसाकारक व पापास्रव के हेतु हैं।

7. चौर्य व्यसन - बिना दी हुई किसी भी वस्तु को ग्रहण कर उस पर स्वामित्व कर लेना चोरी है। चोरी का संबंध वस्तु या धन के अभाव से नहीं है, बल्कि एक मानसिक विकृति का कुफल है। किसी की धरोहर को हड़प लेना चौर्य कर्म है।

कम-बढ़ नापना, तौलना, अनुपात से अधिक मुनाफा कमाना, अपमिश्रण द्वारा असली व नकली वस्तुओं को बेचना राजकर नहीं चुकाना या छिपाना आदि बातें चौर्य कर्म के अन्तर्गत आती हैं।

यह ऐसा व्यसन है, जिसे न केवल गरीब व्यक्ति करता है, बल्कि धनाढ्य व्यक्ति, मूर्च्छा (परिग्रह) के वशीभूत होकर इसका आदी हो जाता है।

भगवती आराधना में कहा गया है कि सुअर का घात करने वाले व परस्त्रीगमन करने वाले से भी चोर अधिक पापी माना जाता है।

अत: उक्त सप्त व्यसन जीवन के संघातक हैं। जिन्हें संकल्पपूर्वक त्याग करके व्यक्ति या श्रावक सदाचरण की ओर बढ़ता है और अणुव्रत के मंगल द्वार पर पहुँचता है।

व्यसन से बड़ा कोई विष नहीं है, जिसकी एक बूँद से शील और आचरण का अमृत विषाक्त हो अग्राह्य हो जाता है।

जो सप्तधा व्यसन सेवन त्याग देते, भाई कभी फल उदुम्बर खा न लेते।
वे भव्य दार्शनिक श्रावक नाम पाते, धीमान धार दृग को निजधाम जाते॥
रे मद्यपान परनारि कुशील-खोरी, अत्यन्त क्रूरतम दण्ड, शिकार चोरी।
भाई असत्यमय भाषण द्यूत क्रीड़ा, ये सात हैं व्यसन, दें दिन रैन पीड़ा॥

श्रावकधर्म सूत्र, आचार्य श्री विद्यासागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाडा

जिज्ञासा : जन्मकल्याणक के समय जन्माभिषेक के बाद तीर्थंकर बालक के कान में कुण्डल पहनाये जाते हैं तो क्या भगवान् के कान जन्म से ही छिद्र सहित होते हैं?

समाधान : उपर्युक्त प्रसंग पर श्री हरिवंशपुराण सर्ग-8 श्लोक 175-176 में इस प्रकार कहा है- समं च चतुरस्रं च संस्थानं दधतः परम्। सुवज्रर्षभनाराचसंघातसुघनात्मनः। 175 कमर्णविक्षतकायस्कंथचिद् वज्रपाणिना। विद्धौ वज्रघनौ तस्य वज्रसूचीमुखेन तौ। 176

अर्थ : जो परम सुन्दर समचतुरस्र संस्थान को धारण कर रहे थे तथा वज्रर्षभ नाराच संहनन से जिनका शरीर अत्यन्त सुदृढ़ था, ऐसे अक्षतकाय जिन-बालक के वज्र के समान मजबूत कानों को इन्द्र वज्रमयी सूची को नोक से किसी तरह वेध सका था।

(2) श्री आदिपुराणपर्व-14, श्लोक नं.-10 में इस प्रकार कहा गया है: कर्णावविद्ध सच्छिद्रो कुण्डलाभ्यां विरेजतुः। कान्ति दीप्तिमुखेद्रष्टुमिन्द्रकभ्यामिपाश्रितौ। 1-10

अर्थ : भगवान् के दोनों कान बिना वेधन किये ही छिद्र सहित थे, इन्द्राणी ने उनमें मणिमय कुण्डल पहनाये थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो भगवान् के मुख की कान्ति और दीप्ति को देखने के लिये सूर्य और चन्द्रमा ही उनके पास पहुँचे हों।

(3) श्री वीरवर्धमान चरितम् अधिकार-9 पृष्ठ-86 श्लोक-54 में इस प्रकार कहा है-

अविद्धछिद्रयोश्चारूकर्णयोस्त्रि जगत्पतेः।
कुण्डलाभ्यां स्फुरद्रत्नाभ्यां शोभां सा परां व्यधात्।-54

अर्थ : पुनः त्रिजगत्पति के अबिद्ध छिद्रवाले दोनों कानों में प्रकाशमान रत्न जटित कुण्डलों को पहनाकर परम शोभा की।

(4) श्री महापुराण (महाकवि पुष्पदंत विरचित) भाग-1 पृष्ठ-63 पर इस प्रकार कहा है-

पविसूइइ ववगयभवरिणहो विंधेप्पिणु सदणजुयलु जिणहो।
विच्छूढइं मणिमयकुंडलइं णं ससहर णियरमंडलई॥

अर्थ : संसार के ऋण से मुक्त जिनके दोनों कानों को वज्रसूची से वेधकर मणिमय कुण्डल पहना दिये गये, मानो चन्द्र और दिनकर के मण्डल हों, जो मानो चंचल राहु से भागकर नाभेय की शरण में आये हों।

(5) श्री पद्मपुराण भाग-1 पर्व-3 श्लोक-188 में इस प्रकार कहा है-

चन्द्रादित्यसमे तस्य कर्णयोः कुण्डले कृते ।
तत्क्षणं सुरनाथेन वज्रसूची विभिन्नयो :॥ 188

अर्थ : इन्द्र ने तत्काल ही व्रज की सूची से विभिन्न किये हुए उनके कानों में चन्द्रमा और सूर्य के समान कुण्डल पहनाये।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में दोनों प्रकार के प्रमाण उपलब्ध हैं। किन्हीं आचार्यों ने तीर्थंकर बालक के कान जन्म से छिद्र सहित माने हैं और किन्हीं आचार्यो ने इन्द्र द्वारा वज्र सूची से छिद्र किये जाना स्वीकार किया है। हम कम बुद्धि वाले जीवों को दोनों ही प्रकार के प्रमाण स्वीकार करने योग्य हैं।

जिज्ञासा : तीन लोक के नक्शे में जो नीचे के एक राजू को निगोद कहा जाता है वह क्या है? और उसमें कौन-कौन से जीव पाये जाते हैं।

समाधान : लोक में सबसे नीचे जो एक राजू निगोद कहने तथा सुनने में आता है, उसके सम्बन्ध में केवल राजवार्तिककार श्री अकंलक स्वामी ने उसे कलकल पृथ्वी नाम से कहा है। अन्य किसी भी आचार्य ने इस एक राजू को कुछ नाम दिया हो ऐसा मेरे देखने में नहीं आया। इस एक राजू स्थान में अक्सर स्वाध्यायी लोग ऐसा समझते हैं कि -

(1) मात्र निगोदिया जीवों का ही निवास होता है। अन्य जीव इस एक राजू में नहीं पाये जाते।

समाधान : इस एक राजू में पाँचों प्रकार के स्थावर सूक्ष्म जीव तो पाये ही जाते हैं, जबकि वायु के आश्रय से रहने वाले बादर वायु कायिक जीवों का भी सद्भाव पाया जाता है।

(2) कुछ की धारणा ऐसी भी है कि निगोदिया जीव मात्र एक राजू में ही पाये जाते हैं, अन्य स्थानों पर नहीं।

समाधान : निगोदिया जीव पूरे तीनों लोकों में व्याप्त हैं। ऐसा लोक का एक भी प्रदेश नहीं है जहाँ निगोद राशि न पाई जाती हो। श्री षट्खण्डागम में इस प्रकार कहा है-

: वणप्फदिकाइया-णिगोद जीवा वादरा सुहुमा पज्जत्तापज्जत्ता केवडि खेत्ते? सव्वलोगे। -3-25

: वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, वनस्पतिकायिकनिगोद जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सर्वलोक में रहते हैं।

(3) कुछ यह भी कहते हैं कि इस एक राजू में नित्य निगोदिया जीवों का निवास होता है।

समाधान : जहाँ तक नित्य निगोदिया जीवों का प्रश्न है, ये भी पूरे तीनों लोकों में ठसाठस भरे हैं। (नित्य निगोदिया जीव वे हैं जो अनादिकाल से आज तक निगोद पर्याय में ही हैं, कभी-भी अन्य पर्याय में जिन्होंने जन्म नहीं लिया है)।

इस चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि नीचे एक-एक राजू स्थान को कलकल पृथ्वी कहा जाता है और उसमें पाँचों प्रकार के स्थावर जीवों का सद्भाव मानना चाहिये। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-3, पृष्ठ-442 में क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी ने लिखा है "सातों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वियों के नीचे, अन्त में एक राजू प्रमाण क्षेत्र खाली है (उसमें केवल निगोद जीव रहते हैं)। यह कथन आगम सम्मत नहीं है। विद्वतगण विचार करें।

जिज्ञासा : मनुष्यों का अल्पबहुत्व बताएँ?

समाधान : सिद्धांतसार दीपक (भट्टारक सकलकीर्ति विरचित) में मनुष्यों का अल्पबहुत्व ग्यारहवें अधिकार के श्लोक नं. 181 से 190 (पृष्ठ-423) तक कहा है। जिसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार है-मनुष्य गति में लवणोदधि और कालोदधि समुद्रों में स्थित-96 अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों का प्रमाण एकत्रित करने पर भी वे सर्वस्तोक हैं। अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों के पंचमेरु सम्बन्धी दश उत्कृष्ट भोगभूमियों के मनुष्य संख्यातगुणे हैं। 181-182 उत्कृष्ट भोगभूमियों के मनुष्यों के पंचमेरु सम्बन्धी हरि-रम्यक नामक दश मध्यम भोगभूमियों के मनुष्य संख्यातगुणे हैं। 183 मध्यम भोगभूमियों से हैमवत-हैरण्यवत नामक 10 जघन्य भोगभूमियों के मनुष्य संख्यातगुणे हैं, और जघन्य भोगभूमियों के प्रमाण से पंच भरत, पंच ऐरावत नामक दश कर्मभूमियों में शुभ-अशुभ कर्मों से युक्त मनुष्य संख्यातगुणे हैं। 184-185 कर्मभूमिज मनुष्यों के प्रमाण से पंचविदेह क्षेत्रों के मनुष्य संख्यातगुणे और विदेहस्थ मनुष्यों के प्रमाण से सम्मूर्च्छन मनुष्यों का प्रमाण असंख्यातगुणा है। 186। जो श्रेणी के असंख्यात भागों में से एक भाग मात्र हैं। आगम में उस श्रेणी के असंख्यातवें भाग का प्रमाण असंख्यात कोटा-कोटि योजन क्षेत्र के जितने प्रदेश होते हैं, उतने प्रमाण कहा है।

अत: सम्मूर्च्छन जन्म वाले लब्धपर्याप्तक मनुष्य कर्मभूमिज स्त्रियों की नाभि, योनि, स्तन और कांख में स्वभावत: उत्पन्न होते है। 189 इस अपर्याप्तक मनुष्यों के अवशेष गर्भज मनुष्य पर्याप्त ही होते हैं, अपर्याप्तक नहीं।

श्री तिलोयपण्णत्ति अधिकार-गाथा नं. 2976 से 2979 तक भी इसी प्रकार मनुष्यों के अल्पबहुत्व का वर्णन किया है।

जिज्ञासा : विजयार्ध पर्वतों पर और भरत आदि क्षेत्रों के म्लेच्छ खण्डों में कौन-सा काल वर्तता है और उसमें हानि-वृद्धि होती है अथवा नहीं।

समाधान : श्री त्रिलोकसार गाथा- 833 में इस प्रकार कहा है-

भरह इरावद पण पण मिलेच्छखंडे सु खयरसेढीसु।
दुस्समसुमादीदो अंतोत्ति य हाणिवड्ढी य ॥833।

अर्थ : भरत और ऐरावत क्षेत्रों में पाँच-पाँच म्लैच्छ खण्डों में तथा विद्याधरों की श्रेणियों में दु:षमा-सुषमा काल के आदि से लगाकर उसी काल के अन्त पर्यन्त हानि-वृद्धि होती है।

श्री तिलोयपण्णति अधिकार-4, गाथा-1629 में भी इसी प्रकार कहा है-

पण-मेच्छ-खयरसेढिसु, अवसप्पुस्सप्पिणीए तुरिमम्मि
तदियाए हाणि-चयं, कमसो पढमादु चरिमोत्ति ॥1629

अर्थ : पाँच म्लेच्छ खण्डों और विद्याधर श्रेणियों मे असंसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी काल में क्रमश: चतुर्थ और तृतीय काल के प्रारम्भ से अन्त पर्यन्त हानि एवं वृद्धि होती रहती है।

जिज्ञासा : जम्बू द्वीप का विस्तार 1 लाख योजन और धातकी खण्डद्वीप का विस्तार 4 लाख योजन है। तो क्या जम्बूद्वीप से धातकी खण्ड का क्षेत्रफल 4 गुना मानना चाहिए?

समाधान : आपका इस प्रकार मानना उचित नहीं है गणित के अनुसार जिस प्रकार वृत्त का क्षेत्रफल निकाल जाता है उसी प्रकार क्षेत्रफल निकालना चाहिए। केवल विस्तार 4 गुना होने से क्षेत्रफल 4 गुना नहीं होता।

श्री 'जम्बूद्वीप पण्णति संगहो' ग्रन्थ में पृष्ठ 188 पर द्वीप और समुद्रों के क्षेत्रफल की अच्छी चर्चा आयी है, तदनुसार जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल से घातकी खण्ड का क्षेत्रफल 144 गुना है। कालोदधि समुद्र का क्षेत्रफल जम्बूद्वीप से 672 गुना है तथा पुष्कारार्धद्वीप का क्षेत्रफल जम्बूद्वीप से 1184 गुना है। गणित के अनुसार क्षेत्रफल निकाले जाने पर भी ये सभी प्रमाण बिल्कुल ठीक बैठते हैं। अत इसी प्रकार मान्यता बनानी चाहिए।

1 / 205, प्रोफेसर्स कालोनी
आगरा-282 001 (उ.प्र.)

अनेकान्त वाचनालय की स्थापना

अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान बीना (म.प्र.) द्वारा स्थापित किये जो रहे 26 अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना के क्रम में 14वाँ अनेकान्त वाचनालय का योग बना झाँसी नगर में। श्री दि. जैन पंचायती बड़ा मंदिर झाँसी में उत्तरप्रदेश का प्रथम वाचनालय अत्यधिक धूमधाम एवं उल्लास के साथ 26 जून को प्रात: 9 बजे स्थापित हुआ। इस वाचनालय में चारों अनुयोगों के ग्रन्थों के अतिरिक्त बाल साहित्य एवं श्रेष्ठ साहित्यकारों की नीतिपरक रचनाओं को उपलब्ध कराया गया है। वाचनालय के अन्तर्गत मंदिर जी में स्थित लगभग 100 हस्तलिखित ग्रन्थों को भी संरक्षित करके विराजमान किया गया है। वाचनालय के सम्यक्संचालन के लिए एक संचालन समिति का भी गठन किया गया है।

संजय जैन, कर्नल, झाँसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंग्य

खेल न खेलने का दुःख

शिखरचन्द्र जैन

व्यंग्य अभिव्यक्ति की अत्यन्त रोचक साहित्यिक विधा है। व्यंग्यकार समाज में प्रचलित अवांछनीय प्रवृत्तियों पर वक्रोक्तियों, अतिशयोक्तियों, व्याजनिन्दा और व्याजस्तुति के माध्यम से करारी चोट करता है, जिससे शब्दों की व्यंजना शक्ति के द्वारा वांछनीय (नैतिक और धार्मिक) सन्देश मनोरंजक और हृदयस्पर्शी रीति से पाठकों तक अनायास पहुँच जाता है। एक व्यंग्य जितने प्रभावशाली ढँग से नैतिक शिक्षा का सम्प्रेषण करता है, उतना प्रत्यक्ष उपदेश नहीं करता। इसलिए साहित्य में व्यंग्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है और यह साहित्यकार की कसौटी भी है। उत्कृष्ट व्यंग्य किसी मासिक पत्रिका के लिए अँगूठी में नगीने के समान होता है। मैं चाहता हूँ कि जैन व्यंग्यकारों की सूची में श्री शिखरचन्द्र जी जैन के साथ और भी नाम जुड़ें। श्रेष्ठ व्यंग्य आमंत्रित हैं।

भारत में हिन्दी की उपेक्षा और अंग्रेजी-माध्यम से शिक्षा पाने के लिए गाँव-गाँव तक फैलता बेतहाशा पागलपन भारत के लिए सचमुच दुर्भाग्य एवं शर्म की बात है। अच्छे कैरियर और चमक-दमक से भरी पाश्चात्य जीवनशैली की भूख ने भारत के हर नागरिक को पब्लिक स्कूलों का दीवाना बना दिया है। इससे भारतीय स्वाभिमान को कितना आघात लग रहा है, इस पर किसी का ध्यान नहीं है तथा विद्या की अपेक्षा क्रीडा ने सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में जो अधिक उपयोगी और प्रतिष्ठित स्थान पा लिया है, वह भी चिन्ता का विषय है। इन घातक प्रवृत्तियों पर मार्मिक चोट की गई है प्रस्तुत व्यंग्य में।

इस बात को लेकर नायकजी के मन में बड़ा मलाल है कि उनका पप्पू खेलता ही नहीं है। दिन भर या तो कामिक पढ़ता है या कार्टून देखता है। कोर्स की किताबों से उसे लगाव नहीं, तो चलो कोई बात नहीं, पर उसे खेलना तो चाहिए न! लेकिन नहीं खेलता। बड़े दुख की बात है। इस संसार में सचमुच दुख ही दुख हैं।

एक रोज मिल गए तो उन्होंने बहुत दिनों से लबालब पीड़ा का घड़ा मेरे सामने उड़ेल दिया। बोले-"देखिए न जैन साब, पप्पू पन्द्रह का होने को आया, पर अब तक यह पता नहीं लग पाया कि उसकी नाव किस ठोर लगना है? गणित उसके पल्ले पड़ता नहीं। साइंस समझ में नहीं आता। भूगोल के नाम से उसे चक्कर आता है। ऐसे में पढ़-लिख कर कुछ बन पाएगा, सो तो लगता नहीं।"

"कैसी बातें करते हैं नायक जी!" मैंने उन्हें सान्त्वना देने की गरज से कहा-"अभी पप्पू की उम्र ही क्या है? आजकल तो पढ़ाई पच्चीस-तीस की उम्र होते तक ही पूरी हो पाती है। तब कहीं पता लग पाता है कि कौन कितने पानी में है।"

"सो बात सही नहीं है जैन साब!" उन्होंने कहा-"और मैं जानता हूँ कि आप जो कह रहे हैं वह मात्र मुझे दिलासा देने के लिए। वरना यह कौन नहीं जानता कि आजकल बच्चा तीन वर्ष का हुआ नहीं कि पता लग जाता है कि वो कलेक्टर बनेगा या चपरासी, इंजीनियर बनेगा या मजदूर, आई.आई.टी. में जायेगा या आई.टी.आई. में।"

"वो कैसे?"

"नर्सरी में एडमीशन से। बच्चा अगर किसी ढंग के पब्लिक स्कूल की प्री-प्रायमरी में एडमीशन पा गया तो समझ लो कि गंगा नहा लिए। फिर तो बच्चे का सिविल सर्विसेज में, या आई.आई.टी. में या आई.आई.एम. तक जा पहुँचना लगभग तय हो जाता है। इसीलिए तो माँ-बाप अपने बच्चे को पब्लिक स्कूल में भरती कराने में जी-जान लगा देते हैं। बड़े शहरों में तो इसके लिए बाकायदा कोचिंग क्लासेस चालू हो गई-हैं। बच्चे को भले ही अपने हाथ से नाम पौंछना न आता हो, पर बोलना सीखते ही उसे कैट-रैट-मैट की रटाई में लगा दिया जाता है और जो रट लेता है, उसका बेड़ा पार हो जाता है।"

"अब ये बात इतनी सीधी भी नहीं है नायकजी, जितनी आप बतला रहे हैं।" मैंने संतुलन बनाए रखने के दृष्टिकोण से कहा-"पब्लिक स्कूल में पढ़ने वाला हर बच्चा हीरा बनकर ही निकलता हो, सो बात भी नहीं है। पर हाँ! एक बात मैं भी मानता हूँ कि इधर लोगों में अपने बच्चों को पब्लिक स्कूल में पढ़ाने की ललक पागलपन की हद तक पहुँचने लगी है और आदमी की इसी कमजोरी का फायदा उठाने हेतु गाँव-गाँव, गली-गली में पब्लिक स्कूल नामधारी संस्थाएँ कुकुरमुत्ते की तरह उग आई हैं, जो मात्र अंग्रेजी भाषा में ही शिक्षा देने का दम भरती हैं। आजकल क्या रईस, क्या मध्यमवर्गीय, क्या गरीब, सबकी इच्छा यही पाई जाती है कि उनका बच्चा पब्लिक स्कूल में पढ़े। अभी एक रोज हमारी काम वाली बाई मुझसे बोली कि मैं उसके बेटे को किसी पब्लिक स्कूल में भरती करने में मदद कर दूँ। बच्चे को पब्लिक स्कूल में पढ़ाने की खातिर वह दो-एक और घर काम पकड़ने को उतारू थी। उसका पति रात में दो घंटे और रिक्शा चलाने के लिए तैय्यार था। पर उनकी दिली तमन्ना थी कि वे अपने बालक को साफ-सुथरी टाईवाली ड्रेस पहने अँग्रेजी में पहाड़ा रटते देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकिन, मेरे भाई, यह मात्र छलावा है। केवल भेड़-चाल है। इसमें बच्चे का भविष्य बनने की गारंटी तो नहीं, पर तथाकथित पब्लिक स्कूल चलानेवालों का वर्तमान बनने की गारंटी पक्की होती है।''

''फिर भी, पब्लिक स्कूल में पढ़ने से बच्चे में अतिरिक्त स्मार्टनेस तो आ ही जाती है।'' नायकजी ने विषय को मजबूती से पकड़े रहते हुए कहा-''म्युनिसिपिल स्कूल के विद्यार्थी की अपेक्षा विषय पर उनकी पकड़ तो अधिक मजबूत हो ही जाती है। गणित की नींव तो दृढ़ बन ही जाती है।''

''गणित को लेकर आप नाहक परेशान हो रहे हैं नायक जी।'' मैंने उन्हें समझाते हुए कहा-''जिन्हें गणित नहीं आता वे किसी से कम बैठते हों सो बात नहीं है। मेरे भाई साहब संस्कृत के प्रकांड विद्वान् हैं। यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रहे हैं। उनकी लिखी हुई पुस्तकें कोर्स में पढ़ाई जाती हैं। पर लघुतम का गणित उनसे न तब बनता था, जब बनना चाहिए था और न अब बनता है, जब बनने-ना बनने से कोई फर्क नहीं पड़ता।''

''अच्छा एक बात बतलाइए जैन साहब,'' इन्होंने तत्काल विषय बदलते हुए कहा-''आप जब पढ़ते थे, तब कोई खेल भी खेलते थे क्या?''

''जरूर खेलता था।'' मैंने उत्तर दिया-''गपई-समुंदर खेलता था। पिट्टू खेलता था। कबड्डी खेलता था। ऐसे तमाम खेल-खेलता था जिनमें पैसे खर्च नहीं होते थे। एक बार तो त्रिटंगी दौड़ में डिस्ट्रिक्ट लेबिल तक सांत्वना पुरस्कार भी मिला था। लेकिन इससे आगे नहीं बढ़ पाया। कारण कि पिता जी खेलों के सख्त खिलाफ थे। वह बहुधा कहा करते थे कि 'पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे कूदोगे होगे खराब'।''

यह सुनकर नायक जी के चेहरे पर प्रफुल्लता पसर गई। मानो वह बहुत देर के बाद, घुमा-फिरा कर मुझे उस विषय पर ला पाने में सफल हुए हों, जिस पर वो सचमुच चर्चा करना चाह रहे थे। बोले-''लेकिन अब तो यह बात कतई सही नहीं बैठती। आजकल तो, जो नवाबी है सो खेल-कूद में ही है। जिसे खेलना आ जाता है, वह कार के एडवरटाइजमेंट में पोज़ देकर लाखों कमा लेता है। इधर कोई दौड़ में अव्वल आया नहीं कि उधर पुलिस में उसकी नौकरी पक्की हो जाती है, जबकि जो यूनिवर्सिटी की परीक्षा में अव्वल आता है उसे पी.एस.सी. क्लियर करने में पसीना आ जाता है। पलभर को दोनों हाथों पर बोझा साधकर जो भारोत्तोलन का पदक पा लेता है, वह तत्काल रेल्वे के अफसर की कुर्सी पर सुस्ताने बैठ जाता है, जबकि केमिस्ट्री की किताब से वर्षों उलझ कर जो परीक्षा पास करता है, उसे मजबूरन रेल्वे प्लेटफार्म पर बोझा ढोने का काम करना पड़ता है। अब तो नौकरियों में स्पोर्ट्स का कोटा अलग से तय रहता है और वह भी केवल सरकारी नौकरियों में नहीं, बल्कि प्रायवेट सेक्टर की नौकरियों में भी। इसलिए क्या हर माँ-बाप को बच्चों को खेलने के लिए प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए?''

''जरूर करना चाहिए।'' मैंने उनकी प्रसन्नता बनाए रखने के उद्देश्य से कहा।

''लेकिन अफसोस कि इस मामले में मैं पूरी तरह हार गया हूँ।'' नायकजी ने एक गहरी हाय-साँस लेते हुए कहा। उनके चेहरे पर प्रसन्नता के स्थान पर विषाद की एक मोटी परत उभर आई। अत्यंत गमगीन स्वर में बोले-''मैंने बहुत कोशिश की जैन साहब, कि पप्पू कोई खेल खेलने लगे। पर नहीं खेलता। खेलता ही नहीं। मुझे इस बात का बहुत दु:ख है। इस संसार में सचमुच दु:ख ही दु:ख हैं।''

7/56-A मोतीलाल नेहरु नगर (पश्चिम)
भिलाई (दुर्ग) छ.ग. - 490020

वर्ष 2001 के विद्वत् महासंघ पुरस्कारों का समर्पण एवं सम्मान समारोह

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा स्थापित **स्व. चन्दारानी जैन, टिकैतनगर स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार** 2001 तथा **सौ. रूपाबाई जैन, सनावद विद्वत् महासंघ पुरस्कार 2001** का समर्पण समारोह गत 24 जून 2002 को परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माता जी के ससंघ सान्निध्य में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली, प्रयाग में आयोजित किया गया। इस समारोह में वरिष्ठ जैन विद्वान् डॉ. दयाचन्द्र जैन साहित्याचार्य, सागर एवं सन्मतिवाणी मासिक के यशस्वी सम्पादक पं. जयसेन जैन, इन्दौर को चन्दारानी जैन स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार 2001 तथा आगमनिष्ठ सक्रिय पं. विद्वान शिखरचन्द्र जैन एवं पं. शीतलचन्द्र जैन, सागर को सौ. रूपाबाई जैन विद्वत् महासंघ पुरस्कार 2001 से सम्मानित किया गया।

ग्वालियर के युवा विद्वान् डॉ. अभयप्रकाश जैन को महासंघ के अध्यक्ष महोदय द्वारा घोषित ऋषभदेव पुरस्कार से सम्मानित किया गया। महासंघ की वरिष्ठ सदस्या डॉ. रमा जैन, छतरपुर द्वारा संकलित / संयोजित **कुण्डलपुर के राजकुमार-जयनायक तीर्थंकर महावीर** पुस्तक का विमोचन डॉ. पन्नालाल पापड़ीवाल, पैठण ने किया।

गणिनी ज्ञानमती, प्राकृत शोधपीठ के इन्दौर केन्द्र के विकास हेतु भूखण्ड प्रदान करने एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की अन्य गतिविधियों में सहयोग प्रदान करते हुए कुँवर दिग्विजय सिंह जैन, इन्दौर तथा राष्ट्र एवं समाज की अप्रतिम सेवा हेतु महासमिति ने राष्ट्रीय महामंत्री की माणिकचन्द्र पाटनी, इन्दौर को **'समाज रत्न'** की उपाधि से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम संचालन एवं संयोजन डॉ. अनुपम जैन ने किया।

डॉ. अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

भव्य आर्यिका दीक्षा समारोह सम्पन्न

21 जून वह चिरप्रतीक्षित दिन था जिसकी बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा थी। इस दिन परमपूज्य आचार्य श्री विरागसागर जी से 13 बहनें आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने वाली थीं। प्रात:काल से ही मोराजी प्रांगण में स्थान-स्थान से लोगों के आने का ताँता लगा हुआ था। सभी जन इस ऐतिहासिक वैराग्य के दृश्य को देखने आ रहे थे। प्रात: काल 4 बजे से सभी दीक्षार्थी बहनों के केशलोंच हुए।

दोपहर में ठीक 1 बजे से दर्शकों से खचाखच भरे वर्णी भवन प्रांगण में विशेष तौर पर बनाये गये मंच से दीक्षा समारोह प्रारंभ हुआ। दीक्षार्थी बहनों ने आचार्य श्री के चरणों में श्रीफल अर्पण कर दीक्षा हेतु प्रार्थना की। आचार्य श्री ने इस प्रार्थना पर मंगल उद्बोधन देते हुए जिनदीक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए बताया कि जिनशासन में स्त्री पर्याय में आर्यिका पद सर्वोत्कृष्ट होता है, जिसमें साधना के द्वारा स्त्रीलिंग का छेद कर परंपरा से मुक्ति प्राप्त होती है। चतुर्विध संघ, विद्वद्वर्ग, उपस्थित जनसमूह की स्वीकृति प्राप्त करने के बाद आचार्य श्री ने दीक्षार्थिनियों की दीक्षा हेतु आशीर्वाद प्रदान किया।

सौभाग्यवती महिलाओं द्वारा बनाये गये अक्षत स्वास्तिक पर बैठकर दीक्षार्थिनियों ने ज्ञाताज्ञात भाव से हुए अपराधों की क्षमा याचना कर समस्त आभूषणों का त्याग किया। तत्पश्चात् आचार्य श्री ने दीक्षासंस्कार किये। ज्ञानोपकरण शास्त्र, संयमोपकरण पिच्छी, शौचोपकरण कमण्डलु एवं वस्त्र प्रदान किये गये। अंत में आचार्य श्री द्वारा नामकरण किया गया। नामकरण संस्कार होते ही उपस्थित जन समूह ने जय-जयकार के नारों से पूरे सभा भवन को गुंजायमान कर दिया। दीक्षार्थिनियों के नाम क्रमश: स्वाति (भिलाई)- विबोधश्री, स्वप्निल (भिलाई)-विमोहश्री वर्षा (सागर)-विविक्तश्री, नीतू (भिलाई)-वियुक्तश्री, नीतू (भिण्ड)-विजेताश्री, अनुराधा (भिलाई)-विनेताश्री, पिंकी (कटनी)-विद्वतश्री, वीणा (भिण्ड)-विशोधश्री, जूली (भिण्ड) विश्वासश्री, श्यामादेवी (पथरिया) क्षु. विशांतश्री, मुन्नी बाई (लखनऊ)-क्षु. विधाताश्री नाम रखे गये। इन दीक्षार्थिनियों में क्षु. विशांतश्री आचार्यश्री विराग सागरजी महाराज की गृहस्थावस्था की माँ हैं।

इसी आयोजना के मध्य में विराग विद्यापीठ भिण्ड के मुखपत्र '**विरागवाणी**' के द्वितीय अंक का विमोचन वीरेन्द्र कुमार "वेटे" कटनी, भरत कुमारजी छाबड़ा, अशोक कुमार गोइल भिलाई द्वारा किया गया। साथ ही पत्रिका के प्रधान संपादक श्रीपाल जैन 'दिवा', कमलकुमार जी कमलांकुर, श्री दीपचंद जी भोपाल ने पू. आचार्यश्री के कर कमलों में पत्रिका की प्रतियाँ भेंट कीं।

वैराग्य के इस क्षण पू. आचार्य श्री की प्रेरणा से वर्णी महाविद्यालय के अधूरे पड़े छात्रावास के निर्माण में आने वाले संपूर्ण व्यय (लगभग 5-6 लाख) को श्री प्रेमचंद जी पटना परिवार ने एवं नलकूप उत्खनन में होने वाले संपूर्ण व्यय (लगभग 1 लाख रुपये) को श्री शीतलचंद जी पड़ा वालों ने प्रदान करने की स्वीकृति दी।

ब्र. पंकज 'सागर'

कैलाश पर्वत का उद्घाटन एवं लोकार्पण समारोह

भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक से पावन भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में पिछले वर्ष पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की मंगल प्रेरणा से "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" तीर्थ का भव्य निर्माण सम्पन्न हुआ था, जिसमें दीक्षा कल्याणक तपोवन में महामुनि ऋषभदेव की पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा धातु के वट वृक्ष के नीचे विराजमान की गई। साथ ही केवलज्ञान कल्याणक समवसरण मंदिर, निर्वाण कल्याणक कैलाश पर्वत एवं भगवान् ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ का भी निर्माण किया गया था।

वर्तमान में राजधानी दिल्ली से 20 फरवरी 2002 को भगवान् महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर के लिए मंगल विहार करके मार्ग में भारी धर्मप्रभावना करते हुए पूज्य माताजी (ससंघ) 12 जून को तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली पर पधारीं, जहाँ उनके ससंघ सान्निध्य में 24 जून को सम्पन्न हुआ भारत वर्ष में प्रथम बार निर्मित अत्यंत सुन्दर-झरनों, फव्वारों, प्राकृतिक सौन्दर्य से समन्वित 108 फुट लम्बे, 72 फुट चौड़े एवं 50 फुट ऊँचे कैलाश पर्वत का भव्य उद्घाटन एवं लोकार्पण समारोह ।

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

अतिशयक्षेत्र खण्डेला विकास परिषद्

खण्डेला 26 जून। श्री खण्डेलवाल दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र, खण्डेला में श्री दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र खण्डेला विकास परिषद् का स्थापना समारोह मनाया गया जिसकी अध्यक्षता भूतपूर्व इंजीनियर लल्लू लाल छाबड़ा, जयपुर ने की। समारोह के मुख्य अतिथि श्री पारस कुमार जैन ए.सी.जे. एम. श्रीमाधोपुर ने दीप प्रज्ज्वलित किया।

सर्वप्रथम मुख्य अतिथि एवं अध्यक्ष का माल्यार्पण कर स्वागत किया गया। अतिशयक्षेत्र खण्डेला के मंत्री श्री महावीर प्रसाद जैन लालासवालों ने कार्यक्रमों के बारे में विशद जानकारी दी।

महावीर प्रसाद जैन लालासवाला
महामंत्री

विद्वत् महासंघ पुरस्कारों हेतु प्रस्ताव आमंत्रित

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा वर्ष 2000 में निम्नांकित 2 पुरस्कारों की स्थापना की गई। प्रत्येक पुरस्कार में 11,000/- रु. की नकद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जाती है।

(1) स्व. चन्दारानी जैन, टिकैतनगर स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(2) सौ. रूपाबाई जैन, सनावद विद्वत् महासंघ पुरस्कार वर्ष 2002 के लिए उक्त पुरस्कारों हेतु महासंघ के सदस्यों से प्रस्ताव सादर आमंत्रित हैं। कृपया प्रस्ताव सादे कागज पर पूर्ण विवरण सहित 31 अगस्त 2002 तक महामंत्री कार्यालय पर भिजवाने का कष्ट करें। प्रस्तावित विद्वान का भी महासंघ का सदस्य होना आवश्यक है।

डॉ. अनुपम जैन

प्रदेश के प्रथम पक्षी चिकित्सालय का शुभारंभ

इंदौर, 26 अप्रैल। दिल्ली में स्थित पक्षी चिकित्सालय की तर्ज पर म.प्र. के पहले पक्षी चिकित्सालय का उद्‌घाटन आज यहाँ कमला नेहरू प्राणी संग्रहालय में किया गया। इसका उद्‌घाटन महापौर कैलाश विजयवर्गीय और निगमायुक्त संजय शुक्ल की उपस्थिति में हुआ। इंदौर नगर निगम तथा जैन समाज के संयुक्त तत्त्वावधान में स्थापित किये गये इस चिकित्सालय में पक्षियों का निःशुल्क उपचार किया जायेगा। इंदौर के इस अस्पताल को समाजसेवी नरेंद्र बाफना ने सेवाएँ देकर तैयार किया है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए केंद्रीय अध्यक्ष श्रीमती आशा विनायका ने प्रोजेक्ट रिपोर्ट बतायी। स्वागत भाषण जया सालगिया ने दिया।

आचार्य ज्ञानसागर विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन

दि. 10 वा 11 को आ. ज्ञान सागर जी महाराज की 30वीं पुण्य तिथि के अवसर पर दो दिवसीय आ. ज्ञानसागर विद्वतसंगोष्ठी का आयोजन पाँच सत्रों में किया गया। मुनि संघ के अतिरिक्त प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद, श्री अनूप चन्द्र जैन एडवोकेट फिरोजाबाद, डॉ. सुशील जैन कुरावली , ब्र. सुनीता शास्त्री ललितपुर, ब्र. सुनीता दीदी, वल्लभ गढ़,पं. शिवचरण लाल जैन मैनपुरी प्रो. मालती जैन मैनुपरी, डॉ. सुशील जैन मैनपुरी आदि ने पूज्य ज्ञान सागरजी महाराज के कृतित्व व व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला।

अष्ट दिवसीय पूजन, प्राकृत भाषा प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

श्री दिग. जैन पंचायती बड़े मंदिर झाँसी में अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान बीना (म.प्र.) ने 18 से 26 जून 2002 तक इस ऐतिहासिक शिविर का आयोजन किया। शिविर के प्रशिक्षक एवं निर्देशक ब्र. संदीप जी 'सरल' ने समस्त शिविरार्थियों के लिए शिविर सम्बंधी नियमावली से अवगत कराते हुए शिविर की उपादेयता पर प्रकाश डाला। ऐलक 105 नम्रसागर जी महाराज ने ब्र. 'सरल' जी के इस अनूठे प्रयास को ऐतिहासिक बतलाते हुए प्राकृत भाषा शिक्षण को एक महान् उपलब्धि कहा।

वाग्भारती पुरस्कार डॉ. उज्ज्वला जैन औरंगाबाद को

युवावर्ग को धर्म क्षेत्र में प्रोत्साहित करने की भावना से डॉ. सुशील जैन मैनपुरी द्वारा स्थापित वाग्भारती पुरस्कार वर्ष 2000 हेतु ब्र. उज्ज्वला सुरेश गोसावी जैन औरंगाबाद को श्रुत पंचमी के पावन पर्व पर 108 मुनि श्री प्रज्ञासागर जी महाराज एवं प्रशस्ति सागर जी महाराज शिष्य आ. श्री पुष्पदन्त सागर जी के सान्निध्य में दि. जैन मंदिर राँची के विशाल हाल में प्रदान किया गया।

शिवपुरी-समाचार

1. श्री महावीर जिनालय में जैन मिलन के सौजन्य से रात्रिकालीन धार्मिक पाठशाला 2 घंटे के लिये नियमित पं. गोपालदास वरैया जयंती पर प्रारंभ की गई जिसमें 80 विद्यार्थी चारों भाग का अध्ययन कर रहे हैं।

2. जीवाजी विश्वविद्यालय द्वारा शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय शिवपुरी के सहयोग से महावीर जिनालय में एक सरल संस्कृत भाषण शिविर 12 मई से निर्देशक श्री नीरज शर्मा के नेतृत्व में प्रो. श्रीमती मधुलता जैन के सहयोग से लगाया गया जिसमें 60 विद्यार्थियों ने प्रतिदिन उपस्थित होकर संस्कृत पढ़ना-बोलना सीखा।

3. माध्यमिक शिक्षा मण्डल की दसवीं बोर्ड परीक्षा में धर्मेन्द जैन पुत्र श्री रवीन्द्र जैन सुपौत्र श्री मुरारीलाल जैन नरवर ने 95 प्रतिशत अंक प्राप्त कर नरवर शिवपुरी ही नहीं वरन् पूरे म.प्र. का गौरव बढ़ाया है।

सुरेश जैन मारौरा
जीवन सदन सर्किट हाउस के पास, शिवपुरी

प्रवचन, विधिविधान हेतु योग्य विद्वान् उपलब्ध

श्री दि. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर में सभी धार्मिक पर्व, दशलक्षण पर्व, आष्टाह्निका पर्व, मंदिर वेदी प्रतिष्ठा, नैमित्तिक पर्व एवं अन्य विधि विधान आदि महोत्सव सम्पन्न कराने हेतु सुयोग्य प्रभावी विद्वान वक्ता उपलब्ध हैं।

दशलक्षण पर्व में विधि-विधान एवं प्रवचनार्थ आप अपने आमंत्रण पत्र संस्थान कार्यालय में शीघ्र भेजें अथवा फोन से सम्पर्क करें ताकि समय रहते व्यवस्था की जा सके।

सुकांत जैन (अधीक्षक)
फोन नं. 730552

दशलक्षण पर्व पर व्रती भाइयों एवं सदाचारी विद्वानों को बुलायें

आगम संरक्षण के पुनीत कार्य में सतत संलग्न अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोध संस्थान, बीना दशलक्षण पर्व पर समाज के आमंत्रण पर विद्वानों को भेजता है।

आमंत्रण पत्र संस्थापक अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना के नाम 10 अगस्त तक भेजें। जो विद्वान् इस संस्थान के माध्यम से दशलक्षण पर्व पर जाना चाहें, वे शीघ्र ही फोन पर सम्पर्क स्थापित करलें।

ब्र. संदीप 'सरल'
अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान,
बीना, सगार (म.प्र.) 470113
फोन नं. (07580) 22270

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2600वीं की बुकिंग

भारत सरकार टकसाल, मुंबई

नोटिस

भगवान महावीर की जयंती स्मारक 2600वीं

(2001) सिक्कों की बुकिंग

अधिसूचित किया जाता है कि भारत सरकार टकसाल, मुंबई ने भगवान की 2600वीं जयंती के अवसर पर विमोचित प्रूफ एवं अपरिचालित स्मारक सिक्कों की बिक्री का प्रबंध किया है।

अ. सिक्कों का विवरण

1. सौ रुपये का सिक्का चार मिश्र धातुओं का वृत्ताकार (परिधि 39 मिमी.) सिक्का है तथा इसका वजन 35 ग्राम है।
2. पाँच रुपये का सिक्का ताम्र निकल मिश्र धातु का वृत्ताकार सिक्का है। इसकी परिधि 23 मिमी है। इसमें प्रतिभूति किनारा भी है, इसका वजन 9 ग्राम है।

ब. सिक्कों के विभिन्न सेटों का मूल्य

जैसा ऑर्डर फार्म में दर्शाया गया है।

स. प्रूफ और अपरिचालित सिक्कों के प्रत्येक सेट की बुकिंग के लिए डाक, पैकिंग और बीमा शुल्क

1 सेट	2 सेट	3 सेट	4 सेट	5 सेट
रु. 130	रु. 190	रु. 250	रु. 330	रु. 400

द. नियम और शर्तें

1. डाक, पैकिंग, बीमा शुल्क तथा बिक्री कर, अधिभार एवं टर्न ओवर टैक्स सहित पूरी राशि अग्रिम रूप में मनीऑर्डर अथवा भारतीय रिजर्व बैंक-खाता भारत सरकार टकसाल, मुंबई के पक्ष में देय किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक की मुंबई शाखा के क्रास किये हुए डी.डी. द्वारा ठीक प्रकार से भरे ऑर्डर फार्म के साथ मुंबई टकसाल में पहुँच जानी चाहिए। मुंबई टकसाल के बुकिंग काउंटर पर नकद भुगतान भी किया जा सकता है। चैक स्वीकार नहीं किये जायेंगे।
   विदेश में रहने वाले व्यक्ति यू.एस. डालरों में अग्रिम भुगतान करके ऑर्डर बुक कर सकते हैं। इसके लिए मुंबई टकसाल में अलग ऑर्डर फार्म उपलब्ध हैं।

1\. सेटों की डिलीवरी के समय मूल्य पर 13 प्रतिशत बिक्री कर लागू होता है। (पैसों को रुपये में राउंड कर दिया जायेगा) यह टैक्स सभी आदेशों पर बुकिंग के समय अदा किया जाना चाहिये।

2\. केवल महाराष्ट्र में बुक किये गए सेटों में बिक्री कर पर 10 प्रतिशत अधिभार तथा सेट के मूल्य पर 1 प्रतिशत टर्न ओवर टैक्स (पैसों को रुपये में बदल दिया जायेगा) अदा किया जाना चाहिये।

3\. **बुकिंग सीमा :** एक संग्राहक को हर किस्म के केवल 5 सेट दिये जायेंगे। तथापि बैंक सिक्का क्लब, शैक्षणिक संस्थान आदि अपने सदस्यों की विस्तृत सूची प्रस्तुत करके अधिकतम सेटों के आर्डर बुक कर सकते है।

4\. **बुकिंग समय :** 15.7.2002 से 30.8.2002 तक मुंबई टकसाल के बुकिंग काउंटर पर 10.00 बजे से 12.00 बजे के बीच आर्डर बुक किये जा सकते हैं। अंतिम तिथि के बाद कोई आर्डर स्वीकार नहीं किया जायेगा।

5 **डिलीवरी :** बुकिंग बंद होने के बाद 18 महीनों के अंदर डिलीवरी दी जायेगी।

ऑर्डर फार्म

प्रति,
महाप्रबंधक,
भारत सरकार टकसाल, फोर्ट, मुंबई- 400023

दिनांक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि.नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2002

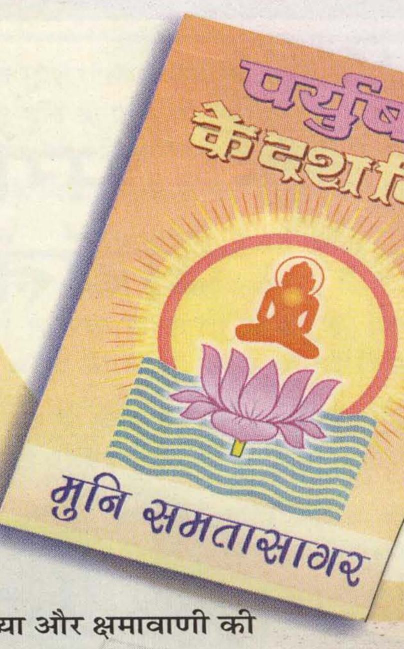

"पर्युषण के दश दिन" पुस्तक उपलब्ध है

पर्वराज पर्युषण जैन परम्परा का एक सुप्रसिद्ध पर्व है। इस पर्व के सार-संदेश को समझने-समझाने के लिये मुनि श्री समतासागरजी द्वारा लिखित कृति पर्युषण के दश दिन कुछ वर्षों से बहुचर्चित हो चुकी है। इस कृति में पर्युषण की ऐतिहासिकता, दशधर्मों की सांगोपांग व्याख्या और क्षमावाणी की आत्मिक भावधारा को सरल, सारगर्भित शब्दों में स्पष्ट किया गया है। यह कृति त्यागी-व्रती एवं विद्वान प्रवचनकारों के लिये अत्यंत उपयोगी है। यही कारण है कि अल्प समय में ही इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। मौलिक शास्त्रीय सन्दर्भों और जनजीवन में रचे-बसे सरल उदाहरणों के माध्यम से कृति का कथ्य सरल और सुग्राह्य है। दशलक्षण पर्व के समय इसे आप स्वयं पढ़ें और पढ़-बाचकर श्रोता समुदाय को भी लाभान्वित करें।

पुस्तक का मूल्य 20 रु है। डाक व्यय सहित इसे निम्न पते से प्राप्त कर सकते हैं :-

1. ब्र. प्रदीप जी, श्री वर्णी दि. जैन गुरूकुल मढ़ियाजी जबलपुर 3
   फोन- 370991
2. राजीव कुमार जैन, लकी बुक डिपो, घंटा घर के पास, ललितपुर,
   फोन- 73790

भक्तामर स्तोत्र की नई केसिट तैयार

जैन जगत् के सुप्रसिद्ध गीतकार / संगीतकार रवीन्द्र जैन ने 'भक्तामर स्तोत्र' पर एक नई केसिट तैयार की है, जिसमें संस्कृत भक्तामर स्तोत्र के 48काव्यों के साथ-साथ मुनि श्री समतासागर जी महाराज द्वारा किया गया उसका दोहानुवाद भी गाया गया है। संस्कृत के शुद्ध उच्चारण और दोहानुवाद के गायन में स्वर संगीत की मधुरता और मोहकता अद्वितीय है। इस केसिट को प्रभात जैन, बम्बई ने तैयार कराया है। रवीन्द्र जी ने इसे अपने डी.आर. प्रोडक्शन से रिलीज किया है। केसिट उपलब्ध कर आप सस्वर भक्तामर-भक्ति का आनंद अवश्य लें।

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-I, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org